भारत का विधि आयोग

उच्चतम न्यायालय - एक नई दृष्टि

विषय पर

एक सौ पचीसवीं रिपोर्ट

1988

349.54 R
M8;4

टेलीफोन नं0 384475
विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली

11 मई, 1988

डी0ए0 देसाई
अध्यक्ष ।

श्री बिंदेश्वरी दुबे,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

प्रिय श्री दुबे,

न्याय पद्धति में सुधार के लिए न्यायालय व्यवस्था की पुनर्संरचना करना एक ऐसा महत् कार्य था जो तात्कालीन विधि और न्याय मंत्री के पत्र द्वारा भारत सरकार ने वर्तमान विधि आयोग को सौंपा । कोई संरचना अंदर से सुदृढ़ हो और लंबे समय तक अक्षय रहे, इसके लिए यह आवश्यक है कि उसकी नींव मजबूत हो । तदनुसार, विधि आयोग ने ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित न्याय व्यवस्था पर अपना अनुसंधान आरंभ किया और ग्राम न्यायालयों की स्थापना की सिफारिश की जो न्याय का एक सहभागिता वाला प्रतिरूप है ।

न्यायिक व्यवस्था ऊर्ध्वसोपानी दिशा में बढ़ते हुए विधि आयोग ने उच्च न्यायालयों के कार्यकरण और कृत्य पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसका शीर्षक था "उच्च न्यायालयों में बकाया मामले - एक नई दृष्टिकोण" । स्पष्ट है कि अगला कदम भारत के उच्चतम न्यायालय के संबंध में था ।

विधि आयोग ने भारत के उच्च न्यायालय के कार्यकरण और कृत्यों की समालोचनात्मक समीक्षा की है । मुकदमों की बढ़ती हुई समस्या विकराल रूप धारण किए हुए है और यदि कारगर उपाय अपनाकर इस समस्या से नहीं जूझा गया तो स्थिति नियंत्रण से परे हो सकती है ।

अत: मुझे विधि आयोग की 126वीं रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता हो रही है । इसका विषय है -"उच्चतम न्यायालय - एक नई ~~नवीन~~ दृष्टिकोण ।"

रिपोर्ट में उन सभी बातों का उल्लेख किया गया है जिनके कारण वर्तमान-समस्या उत्पन्न हुई है और उन प्रभावी उपायों का भी उल्लेख किया गया है जो ऐसी स्थिति को सुधारने और यथापूर्व स्थिति को बहाल करने में समर्थ है । आशा की जाती है कि इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को सच्चे मन से तुरंत कार्यान्वित किया जाएगा अन्यथा अब आगे विलंब असह्य हो जाएगा ।

यदि स्थिति को और बिगड़ने दिया गया तो समस्या अति जटिल हो जाएगी जिसका संकेत अंतिम अध्याय में किया गया है । हम उस ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए विवश हैं ।

सादर,

आपका

(डी०ए० देसाई)

संलग्न : रिपोर्ट

विषय-वस्तु

अध्याय 1 पिछले प्रयास

अध्याय 2 वर्तमान स्थिति

अध्याय 3 विलंब के कारण और उपचारी उपायों पर पिछले प्रयास

अध्याय 4 सिफारिशें

अध्याय 5 पूर्वाभास

टिप्पण और निर्देश

परिशिष्ट I सारणियां

परिशिष्ट II प्रारूप

परिशिष्ट III विधि आयोग की ओर से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को तारीख 19 जनवरी, 1988 को लिखा गया पत्र ।

349.54
M8,4

PARLIAMENT LIBRARY
(Central Govts Publications)
Acc No. RC... 77086(-5)
Date........ 1.12.88

अध्याय 1

पिछले प्रयास

1.1. किसी हठीले आशावादी के सिवाय, कोई भी व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में वर्तमान समस्यापूर्ण स्थिति की समीक्षा और उसमें सुधार के लिए किंचित सुझाव देने का प्रयास नहीं करना चाहेगा । विद्वान और प्रतिभावान विधि सुधारकों द्वारा पूर्व में किए गए अनेक प्रयास निरंतर असफल होते रहे हैं । इसके विपरीत-प्रत्येक ऐसे प्रयास के परिणामस्वरूप समस्या और उलझती गई है । अत: कोई भी व्यक्ति ऐसी स्थिति से कतराता ही रहा है जहां सफलता की कोई आशा नहीं है । इसके बावजूद भी मानवीय पटुता का यही तकाजा है कि असफलता को स्वीकार कर लिया जाए और पिछले प्रयासों को ध्यान में रखते हुए, हरेक को यदि संभव हो तो, इस सुखद आशा के साथ आत्मविश्वासपूर्वक नया हल प्राप्त करने के लिए संघर्षरत रहना चाहिए कि सहजता से पकड़ में न आने वाली समस्या मानव की पकड़ से परे नहीं है । यह रिपोर्ट इसी दिशा में पहला कदम है ।

1.2. इसके पूर्व कि विधि आयोग औपचारिक रूप में कुछ ऐसे सुझाव दे जो स्थिति को सुधारने में सहायक हो सकें, भले ही उनसे समस्या पूर्णत: हल न हो, उसे पिछले प्रयासों और किए गए विचारविमर्श से होने वाले लाभ को ध्यान में रखना चाहिए जिससे कि पुनरावृत्ति की भ्रांति से बचा जा सके और नए रूप में नया दृष्टिकोण विकसित किया जा सके ।

1.3. भारतीय संविधान की स्कीम में उच्चतम न्यायालय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । संविधान निर्माताओं को उच्चतम न्यायालय से अत्यंत उच्च आशाएं थीं और इसीलिए उन्होंने उच्चतम न्यायालय को विशाल अधिकारिता प्रदान की । ब्रिटेन के हाउस आफ लार्ड्स और अमरीका के उच्चतम न्यायालय के साथ इसकी तुलना न करते हुए, निर्विवादत: यह कहा जा सकता है कि भारत का उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता विशालतम

है और उसके अंतर्गत मूल अधिकारों के अतिक्रमण की दशा में, अनुतोष प्रदान करने की मूल अधिकारिता जैसी अनुपम अधिकारिता भी है जो कि अभी तक किसी भी देश की न्याय-व्यवस्था को प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त न्यायालय की शरण में जाने के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में गारंटी दी गई है। संविधान के अधीन अनुच्छेद 32,71,131,132, 133, 134 और 136 के अधीन विभिन्न प्रकार की अधिकारिता होते हुए भी, विभिन्न कानूनों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिए उपबंध किए गए हैं। इस विस्तृत अधिकारिता का उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं को अन्तर्निहित अधिकारिता प्रदान करके और विस्तार किया गया और इसके अतिरिक्त, इसने सामाजिक कार्रवाई के मुकदमे ग्रहण करने की अधिकारिता भी प्राप्त कर ली है। विभिन्न प्रकार की और निरंतर परिवर्तनशील अधिकारिता के कारण भारत के उच्चतम न्यायालय को अब भारतीयों का उच्चतम न्यायालय अभिहित किया गया है। भारत के उच्चतम न्यायालय से भारतीयों के उच्चतम न्यायालय में परिवर्तित होने में संस्था को उसके पास बढ़ते जा रहे मुकदमों के अंबार के रूप में भारी कीमत चुकानी पड़ी। वैसे यह समस्या हाल ही में उभर कर नहीं आई है। बहुत पहले, 1955 में, जब प्रथम विधि आयोग की स्थापना की गई थी तब उसके विचारार्थ ~~विधि आयोग को~~ विषयों में से एक विषय के बारे में यह निवेदन किया गया था कि वह न्याय प्रशासन की पद्धति की सभी पहलुओं के दृष्टि से समीक्षा करे और उसमें सुधार करने के लिए साधन और साध्यों का सुझाव दे और उसे त्वरित और कम खर्चीला बनाए।"[1] विचारार्थ विषयों पर कार्रवाई करते हुए, प्रथम विधि आयोग ने इस बात पर ध्यान देने के पश्चात् कि उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयुक्त अधिकारिता न केवल विशालतम है अपितु, राष्ट्रकुल और एंग्लो सेक्सन देशों के उच्चतम न्यायालयों की अधिकारिता की दृष्टि से इसकी अधिकारिता विविध प्रकार की है,[2] अपना ध्यान उच्चतम न्यायालय में बढ़ रहे कार्य और उसके तुलना में कम निपटान तथा बढ़ते हुए बकाया

मामलों पर केंद्रित किया । उसको विश्वास हो गया कि प्रति वर्ष न्यायालय के औसत निपटान को ध्यान में रखते हुए, ऐसा लगता है कि न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाए जाने के बावजूद वे विद्यमान बकाया मामलों को निपटाने में समर्थ न हो सकेंगे । उच्चतम न्यायालय के संबंध में उनकी सिफारिशों में उनका ध्यान न्यायाधीशों की सेवा शर्तों में सुधार करने और दांडिक अपीलों और अन्य विविधों के अधीन पिटीशनों के विषय में और अधिक कड़ाई बरतने तथा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशनों के विषय में प्रारंभिक सुनवाई का प्रक्रम आरंभ करने पर केंद्रित था । आयोग ने आशा व्यक्त की कि सिफारिशों और न्यायाधीशों की संख्या में हुई वृद्धि के परिणामों का मूल्यांकन करने के लिए कुछ समय स्थिति पर नजर रखी जाए । 14वीं रिपोर्ट में प्रस्थापित निदान और स्थिति को सुधारने के लिए की गई सुधारात्मक सिफारिशों के परिणामों की उत्सुकता से प्रतीक्षा की गई ।[3] संक्षेप में कहा जाए तो स्थिति बहुत अधिक उलझ गई और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में समय समय पर की गई वृद्धि से भी, मामलों के निपटाने में होने वाले विलंब को कम करने और बकाया मामलों के अंबार को कम करने की दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी । यह मान लिया गया कि 'जब कभी पर व्यक्ति मध्यस्थों या अधिनिर्णायकों द्वारा विनिश्चय साधारण, सार्वजनिक और सकारात्मक मानदंडों के अनुसार किए जाते हैं, प्राधिकृत और आशाजनक उचित विनिश्चय तक पहुंचने में थोड़ा समय अनिवार्य रूप से खर्च किया जाना चाहिए । कौन-सा लगा समय उचित है और कौन-सा उचित नहीं है, यह महत्वपूर्ण समझने की परख और अनुभवजन्य विश्लेषण दोनों पर निर्भर करता है'।[4] फिर भी इस बात का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता कि उन प्रतिवादी पक्षकारों के बीच जो अपने विवादों के हल के लिए इस पद्धति का आश्रय लेते हैं, न्याय करने के लिए बनाई गई पद्धति युक्तियुक्त समय के भीतर और युक्तियुक्त खर्च में उसे हल करने में अवश्य समर्थ होनी चाहिए । ये दोनों पहलू उच्चतम न्यायालय के ध्यान से बच रहे थे ।

1.4. विधि आयोग ने जल्दी जल्दी सिविल प्रक्रिया संहिता[5], दंड प्रक्रिया संहिता[6], की समीक्षा कर डाली और उसका पुनरीक्षण भी कर डाला ।[7] हालांकि, ये तीनों रिपोर्टें यथार्थ रूप में उच्चतम न्यायालय के संबंध में नहीं थीं, तथापि इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता की में दांडिक अपील के विषय में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 379 पुर:स्थापित करके, थोड़ा विस्तार किया गया है । इस धारा में यह उपबंध है कि यदि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की दोषमुक्ति के किसी आदेश को, अपील में उलट दिया है और उसे सिद्ध दोष किया है और उसे मृत्यु या आजीवन कारावास का दंड दिया है, तो वह उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकता है । इस उपबंध को दांडिक विषयों के संबंध में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता विहित करने वाले अनुच्छेद 134 के प्रकाश में पढ़ा जाना होगा ।

1.5. संविधान के अनुच्छेद 133 ने, जैसा कि उसे मूल रूप में अधिनियमित किया गया था, विवाद की विषयवस्तु के मूल्यांकन के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्रदान किया है । उच्चतम न्यायालय को कोई अपील उस दशा में की जा सकेगी यदि प्रथम बार के न्यायालय में और अपील की जाने पर भी विवाद की विषय-वस्तु का मूल्यांकन 20,000 रु० से कम नहीं था या है । उच्चतम न्यायालय में अपील उस दशा में भी होगी यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर देता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने योग्य है । इस उपबंध ~~से उसकी मूल अवस्था में~~ को प्रवृत्त किए जाने पर, विषम परिणाम निकले । यदि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का आश्रय लेकर उच्च न्यायालय में कोई पिटीशन इस प्रश्न के साथ फाइल की जाती है कि विवादग्रस्त विषयवस्तु का मूल्य 20,000 रु० या उससे अधिक है तो उच्च न्यायालय इस पिटीशन को आरंभ में ही खारिज करने

की अपनी अधिकारिता के होते हुए भी, अनुच्छेद 131 (1), जैसा कि वह उस समय था, की भाषा को ध्यान में रखते हुए, एक प्रमाणपत्र प्रदान करना होगा । अनेक अपीलें जो उच्च न्यायालय के विचार से तुच्छ ठहराई जा सकती थीं, विवाद की विषयवस्तु के मूल्य के कारण ही उच्चतम न्यायालय में फाइल की जा रही थीं । किसी गणतंत्रीय संविधान में विवाद की विषयवस्तु के मूल्य के आधार पर ही अपील का अधिकार प्रदान किया जाना उत्साहवर्धक था । यदि कार्यरूप में इसे परिणत किया जाता है तो इसका यह अर्थ होगा कि धनी व्यक्ति अपने विवाद को उच्चतम न्यायालय तक ले जा सकता है किन्तु कोई निर्धन व्यक्ति जिसके विवाद की विषयवस्तु 20,000 रु0 से कम आंकी गई है, उक्त अधिकार से वंचित रहेगा । वास्तव में, वह समय संपत्ति के मूल अधिकार के प्रति श्रद्धापूर्ण अनुरक्ति का शांत युग था । किन्तु, विधि आयोग ने बकाया मामलों के बढ़ते अंबार से त्रस्त होकर, सिविल विषयों में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता की समीक्षा का काम अपने हाथ में लिया[8]। उसकी यह राय थी कि संविधान के अधिनियमन के समय 1950 में नियत की गई 20,000 रु0 की न्यूनतम सीमा, रुपए के गिरते मूल्य की दृष्टि से बहुत कम थी और इसलिए छोटे संपत्ति विषयक मामले, विषयवस्तु के मूल्यांकन पर ही, उच्चतम न्यायालय में दाखिल किए गए हैं और यह कि उच्चतम न्यायालय को तब तक कष्ट न दिया जाए जब तक कि किसी मामले में अत्यधिक बड़ी रकम अंतर्वलित न हो । यद्यपि विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय में अपील के प्रयोजनार्थ, विवाद की विषयवस्तु के न्यूनतम मूल्य को बढ़ाने की दृष्टि से एक जांच आरंभ की तथापि उसने अंततः यही सिफारिश की कि यह मूल्यपरक धारणा समय के साथ पुरानी पड़ गई है और इसे समाप्त करना होगा और यह कि अनुच्छेद 133 को इस प्रकार नया रूप दिया जाना चाहिए कि जिससे 'किसी उच्च न्यायालय की सिविल कार्यवाही में दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय

में होगी, यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर देता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने योग्य है ।[9] यह रिपोर्ट अक्तूबर, 1971 में प्रस्तुत की गई थी । उसके तुरंत पश्चात्, विधि आयोग का पुनर्गठन किया गया था ।

1.6. विधि आयोग के पुनर्गठन के पश्चात्, भारत सरकार ने पुनर्गठित विधि आयोग से अनुरोध किया कि वह संविधान के अनुच्छेद 133 का समुचित संशोधन करने के संबंध में उसी विषय की और समीक्षा करे जिससे कि मूल्यांकन का आधार समाप्त किया जा सके जो किसी मुकदमा लड़ने वाले को अपील का अधिकार प्रदान करता है ।[10] विधि आयोग अपने पूर्ववर्ती आयोग की इस बात से सहमत था कि धनीय मूल्य संबंधी परीक्षण अब असंगत हो गया है और इसलिए अनुच्छेद 131 (1) के उपखंड (क) और उपखंड (ख) निकाले जाने योग्य हैं । तदनुसार, आयोग ने यह सिफारिश की कि संविधान के अनुच्छेद 133 (1) का संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि वह निम्नलिखित रूप में पढ़ा जा सके :-

"(1) भारत के राज्यक्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय की सिविल कार्यवाही में दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या अंतिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में होगी यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर देता है कि :-

(i) उस मामले में विधि का सार्वजनिक महत्व का कोई सारवान प्रश्न अंतर्ग्रस्त है ; और

(ii) उच्च न्यायालय की राय में उस प्रश्न का उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चय आवश्यक है ।" ।

विधि आयोग की सिफारिश को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया और सिफारिश किए गए रूप में, अनुच्छेद 133 (1) का संविधान (तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1972 द्वारा 27 फरवरी, 1973 से, संशोधन कर दिया गया । संशोधन इस अर्थ में निर्बन्धक प्रकृति का था कि प्रयास उस

प्रवेश मार्ग को छोटा करना था जिसके द्वारा उच्च न्यायालय से प्रमाणपत्र के आधार पर अपीलें उच्चतम न्यायालय में पहुंच जाया करती थीं । जैसा कि इसमें ऊपर कहा गया है, जब धनीय मूल्यांकन का आधार प्रवृत्त था, उच्च न्यायालय के पास किसी पिटीशन को आरंभ में ही खारिज करते समय एक ही विकल्प था कि वह प्रमाणपत्र जारी करे । संशोधन के पश्चात्, उच्च न्यायालय, यदि आरंभ में ही किसी पिटीशन को खारिज करता है तो वह आम तौर पर प्रमाणपत्र जारी नहीं करेगा क्योंकि यदि उस मामले में विधि का सार्वजनिक महत्व का कोई प्रश्न अंतर्ग्रस्त है तो उच्च न्यायालय पिटीशन को आरंभ में ही खारिज नहीं करेगा -और यदि पूर्ण सुनवाई कर लेने के पश्चात् पिटीशन खारिज की जाती है तो उच्च न्यायालय आमतौर पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि दूसरी शर्त का समाधान हो गया है कि उच्च न्यायालय की राय में उक्त प्रश्न की उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता है । अत: उस फंदे को छोटा करने का यह पहला प्रयास था जिससे मामले उच्चतम न्यायालय में पहुंच जाया करते थे ।

1.7. किंतु, अनुच्छेद 133 (1) के संशोधन का उतना वांछित प्रभाव नहीं हुआ है जितना उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 136 के अधीन जो अछूता रह गया है, विस्तृत अधिकारिता का उपभोग किया जाता है ।

1.8. विधि आयोग ने, सिविल प्रक्रिया संहिता पर व्यापक रूप से विचार करते समय,[11] उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता पर पुन: विचार नहीं किया ।

1.9. वर्ष 1974 तक, उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों ने कुख्याति अर्जित कर ली और विकराल रूप धारण कर लिया । "सभी संवेदनशील न्यायाधीश और वकील न्यायप्रशासन में बढ़ते हुए बकाया मामलों

की समस्या के बारे में गंभीर चिंता का अनुभव करते रहे हैं । मामलों के विनिश्चय में सभी प्रक्रमों पर हुए विलंब से अपरिहार्य रूप से बकाया मामलों का संचय हुआ है और इन बकाया मामलों ने अब बहुत कुछ चिंतनीय आयाम का रूप धारण कर लिया है ।[12] इस प्रकार विधि आयोग उच्चतम न्यायालय पालिका की संरचना और अधिकारिता पर अपना ध्यान केंद्रित करता रहा है । विधि आयोग ने अपनी सिफारिशें तैयार करने से पूर्व, सभी हितबद्ध समूहों को एक व्यापक प्रश्नावली भेजी और उनसे जानकारी मांगी । उनकी ध्यानपूर्वक समीक्षा की जाने और विधि आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष द्वारा जो स्वयं लंबे अर्से तक उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके थे और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में सेवानिवृत्त हुए थे, अच्छी तरह सहायता प्रदान की जाने के पश्चात्, आयोग ने अपनी सिफारिशें कीं । यहां केवल उनका ही उल्लेख किया जाएगा जिनका संबंध बकाया मामलों की समस्या और मामलों के निपटारे में विलंब से है । महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि संविधान के अनुच्छेद 134 (1) (ग) का इस प्रकार संशोधन किया जाए जिससे कि प्रमाणपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय में दांडिक अपीलों को ऐसे मामलों तक निर्बन्धित किया जा सके जहां उच्च न्यायालय का प्रमाणपत्र इस आशय का हो कि मामले में विधि का सार्वजनिक महत्व का सारवान प्रश्न अंतर्ग्रस्त है जिसकी उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है । आयोग ने संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील करने की बाबत किसी संशोधन की सिफारिश नहीं की । रिट पिटीशनों में तथ्य के विवादग्रस्त प्रश्नों के विचारण या अंत:कालीन आदेश जारी करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय के समक्ष रिट पिटीशन की बाबत जहां तक प्रक्रिया का संबंध है, कुछ परिवर्तनों की सिफारिश की गई थी । आयोग सेवा संबंधी मामलों के विचारण के लिए विशेष सेवा न्यायालय के सृजन और क्षेत्रीय अपील न्यायालयों के सृजन के भी विरुद्ध था । अत: मुख्य सिफारिश उच्चतम न्यायालय में दांडिक

अपील करने के लिए पात्रता के संबंध में थी ।

1.10. पांच वर्ष की अवधि के भीतर, उच्चतर न्यायालयों में बिगड़ती स्थिति ने विधि आयोग का ध्यान आकर्षित किया । उसने उच्च न्यायालयों और अन्य अपीली न्यायालयों में विलंब और बकाया मामलों के संबंध में कार्रवाई की[13] । इस रिपोर्ट पर कोई समय लगाना अनावश्यक है क्योंकि वह उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों की समस्या के संबंध में नहीं है ।

1.11. इस अनुष्ठान (विचार-विमर्श) के दौरान यह महसूस किया गया कि महत्वपूर्ण कारणों में से एक कारण जो मामलों के निटारे में विलंब का कारण है, और जिससे बकाया मामले बढ़ते हैं, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में रिक्तियों को भरने में विलंब भी है । सरकार द्वारा इस बाबत निर्देश किए जाने पर विधि आयोग ने न्यायाधीशों की नियुक्ति के ढंग की समीक्षा की और कुछ सिफारिशें कीं ।[14] उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए इस समय जो प्रक्रिया विहित है उसमें किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया गया । महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि रिक्तियों को भरने की प्रक्रिया अग्रिम रूप से आरंभ कर दी जानी चाहिए और रिक्तियों को भरने में किसी विलंब से बचने के लिए हर प्रयास किए जाने चाहिए । रिपोर्ट के बाद, नियुक्ति के ढंग में कोई परिवर्तन नजर नहीं आया और रिक्तियों को भरने में विलंब लंबे समय से विघ्न बना हुआ है ।[15]

1.12. उच्चतम न्यायालय में बकाया मामले और मामलों के निपटारे में होने वाले विलंब के विषय में सभी बाह्य पद्धतियों और स्थिति में सुधार लाने के लिए सिफारिश किए गए कदमों की समीक्षा कर लेने पर, विधि आयोग ने, उच्चतम न्यायालय के समक्ष आने वाले वादों और विवादों के शीघ्र निपटारे के लिए आमूल सुधारात्मक उपायों का सुझाव देने की अपनी जिम्मेदारी से बचने में असमर्थ होकर, एक पृथक प्रभागों में अर्थात् सांविधानिक प्रभाग और अपीली प्रभाग में समविभाजित किया जा सकता है । यह

इस विचार पर जोर दिया है कि क्या उच्चतम न्यायालय को दो

दृष्टिकोण पूर्णतः मौलिक हो सकता था और इसलिए विधि आयोग ने एक विस्तृत प्रश्नावली जारी की । इस बात को स्वीकार करना होगा कि प्रश्नावली के प्रति प्रतिक्रिया विशेष रूप से संगठित बार से बहुत ही प्रतिकूल थी । इस प्रतिकूलता को भी सराहा जा सकता है किंतु यह मान लेने के पश्चात् कि न्यायालय डाकेटों का प्रबंध ऐसी अवस्था में पहुंच गया है कि जहां असंभव शब्द बार बार आता है तिस पर भी संगठित बार के पास स्थिति को सुधारने और न्यायालय की समरूपता में दरार पड़ने से बचाने के लिए कोई विनिर्दिष्ट ठोस वैकल्पिक सुझाव नहीं हैं । विधि आयोग ने इस बात का भी उल्लेख किया कि पिछली रिपोर्ट में विधि आयोग ने क्षेत्रीय अपील न्यायालय का समर्थन नहीं किया था तथापि उसने बनती हुई कष्टमय स्थिति को ध्यान में रखते हुए, एक प्रश्न उछाला था कि क्या उच्चतम न्यायालय के स्थान पर एक सांविधानिक न्यायालय को जो अनन्य रूप से सांविधानिक विषयों को निपटाए और एक अपील न्यायालय को जो सांविधानिक मामलों से भिन्न विधि के विवादों के अंतिम मध्यस्थ के रूप में कार्य करे, स्थापना की जाए । विधि आयोग ने इस तीखी आलोचना पर भी ध्यान दिया है कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय जमींदारी उन्मूलन संबंधी कानूनों में रोक लगाकर किसानों की दशाओं को सुधारने के रास्ते में रोड़े अटकाते हैं । टिप्पणीकार कहते हैं कि आज उच्चतम न्यायालय जिस तरह कार्य कर रहा है उसमें निर्बल व्यक्तियों या निम्न आर्थिक प्रास्थिति वाले व्यक्तियों के न्याय प्राप्त करने या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए जाने की इतनी भी संभावना नहीं है जिससे न्यायपालिका के विशिष्ट चरित्र में मूलभूत परिवर्तन किया जा सके । विधि आयोग द्वारा की गई सर्वाधिक क्रांतिकारी और दूरगामी सिफारिश यह थी कि उचित होगा कि देश के उच्चतम न्यायालय में ही सांविधानिक न्यायनिर्णयन के लिए एक विशेष प्रकार के एक तंत्र का सृजन किया जाए - जिसकी, परिकल्पना सांविधानिक प्रभाग के रूप में की गई है ।[16] तदनुसार

सिफारिश यह थी कि भारत के उच्चतम न्यायालय में दो प्रभाग होने चाहिए अर्थात् (1) सांविधानिक प्रभाग, और (2) विधिक प्रभाग ।[17] आयोग ने प्रत्येक प्रभाग की अधिकारिता और दोनों प्रभागों को मामलों के आबंटन की रीति की व्याख्या की । उसने प्रस्तावित सांविधानिक प्रभाग की संरचना का भी उल्लेख किया और इस निमित्त विस्तृत सिफारिशें भी कीं ।

1.13. यदि इस सिफारिश को सही रूप में क्रियान्वित किया जाता तो संभवत: स्थिति बहुत अधिक सुधर गई होती । वर्तमान रिपोर्ट, 95वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश से अल्पीकृत नहीं की गई है । रिपोर्ट को कार्यान्वित करने से यह अंदाज लगाया जाता है कि क्या विभाजन हर तरह से अप्रियकर है । वास्तव में, स्वयं उच्चतम न्यायालय ने केवल सांविधानिक मामलों से निपटने का कार्य उच्चतम न्यायालय पर छोड़ने और एक राष्ट्रीय अपील न्यायालय के सृजन की जोरदार वकालत की थी । बिहार लीगल सपोर्ट सोसाइटी द्वारा फाइल की गई एक पिटीशन में यह शिकायत की गई थी कि धनी और समृद्ध व्यक्ति तो न्यायालय द्वारा किए गए नीतिगत विनिश्चय के विरुद्ध किसी मामले की सुनवाई के लिए न्यायालय से मध्यरात्रि में भी आग्रह कर सकते हैं जबकि नीतिगत विनिश्चय के नाम पर ही निर्धन और अकिंचन व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय की ड्योढ़ियां भी नहीं चढ़ने दिया जाता है । इस रिट पिटीशन के फाइल करने का अवसर तब आया जब जैसा कि निर्णय में दर्शित है, न्यायालय की एक न्यायपीठ 5 सितंबर, 1986 को रात्रि में देर तक बैठ कर श्री ललित मोहन थापर और श्री श्याम सुंदर लाल के जमानत संबंधी आवेदन पर विचार करती रही और यह कि इस न्यायालय ने इन दोनों सज्जनों के जमानत संबंधी आवेदन पर विचार करने में जो चिंता दिखाई, वही चिंता ऐसे सभी मामलों में जिनमें नागरिकों की चाहे वे उच्च श्रेणी के हों या निम्न श्रेणी के, स्वतंत्रता से संबंधित प्रश्न उत्पन्न हुए हों, इस न्यायालय के रुख और रुझान में भी अवश्य ही प्रकट होनी चाहिए और यह कि निर्धन लोगों के

जमानत संबंधी आवेदनों को भी उतना महत्व दिया जाना चाहिए जितना इन बड़े उद्योगपतियों के जमानत आवेदनों को दिया गया है । इस दलील के प्रत्युत्तर में तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में एक संविधान खंड पीठ ने न्यायालय के अवरुद्ध डाकेटों पर ध्यान दिया जिसके कारण ऐसी न्यायालय पद्धति बनी जिसका कि इसमें इसके पूर्व खाका खींचा गया है और उसने एक उपचारी उपाय का सुझाव दिया कि "उचित होगा कि एक राष्ट्रीय अपील न्यायालय स्थापित किया जाए जो सिविल, दांडिक, राजस्व और श्रम संबंधी मामलों में देश के उच्च न्यायालयों और अधिकरणों के निर्णयों से विशेष इजाजत द्वारा की गई अपीलों को ग्रहण कर सके और जहां तक वर्तमान शीर्ष न्यायालय का संबंध है, उसका संबंध ऐसे मामलों को ग्रहण करने तक होना चाहिए जिनमें सांविधानिक विधि और लोक विधि के प्रश्न अंतर्ग्रस्त हैं ।[18] (बल प्रदान किया)(जोर दिया गया)

1.14. उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के, जिसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायमूर्ति ने की थी, इस संप्रेक्षण से विधि आयोग को उस सिफारिश को बल प्राप्त हुआ तो उसने अपनी 95वीं रिपोर्ट में की थी । अत: यदि इसके पूर्व, न्यायालय के विभाजन के दो प्रभागों में सुझाव के विरुद्ध वकीलों का कोई स्पष्ट विरोध हुआ भी था तो वह इस निर्णय के पश्चात् कभी सुनाई नहीं दिया । अत: उच्चतम न्यायालय की संस्थागत अनुक्रिया न्यायालय के विभाजन के पक्ष में है । अत: सरकार को इसे प्रभावी करने के लिए अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करनी चाहिए ; अन्यथा ऐसी राय बनने की संभावना है कि जहां थोड़ा सा भी विरोध होता है वहां विधि आयोग की सिफारिश पर कार्रवाई करने की इच्छा को तुरंत त्याग दिया जाता है । वर्तमान विधि आयोग अपनी 95वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश को कड़ा समर्थन प्रदान करता है क्योंकि उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों को कम करने के लिए अभी तक कोई अन्य सिफारिश सफल नहीं हुई है और यह सही दिशा में उठाया गया एक व्यापक कदम है ।

1.15. हल के अपनी अनवरत खोज में, विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय में बिगड़ती स्थिति से निपटने के लिए एक और उपचारी उपाय का सुझाव देने का एक बार फिर प्रयत्न किया । ऐसा प्रतीत होता है कि विधि आयोग की यह राय थी कि लिखित पक्षकार के साथ असंलग्न कभी समाप्त न होने वाले मौखिक तर्कों ने न्यायालय का बहुत अधिक समय ले लिया है । अधिक मामलों को कारगर ढंग से निपटाने के लिए बहुत कम समय छोड़ा है । ऐसी कुख्यात प्रवृत्ति से बकाया मामलों का अंबार लगता जा रहा है । विधि आयोग ने, तदनुसार, उच्चतम न्यायालय में मौखिक और लिखित तर्कों से निपटने के लिए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है ।[19] इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि विधि आयोग ने उस समय मौखिक बहस का पूर्णत: विलोपन करने का पक्ष नहीं लिया । ना तो सरकार और न ही उच्चतम न्यायालय, विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को कार्यान्वित करना चाहते हैं ।

1.16. यह ऐसा प्रक्रम है जिस पर वर्तमान विधि आयोग ने जिसे व्यापक न्यायिक सुधारों की समीक्षा और सिफारिश करने का कर्तव्य सौंपा गया है, अपनी खोज निम्नतर स्तर से आरंभ की और वह ऊपर की ओर बढ़ते हुए अब ऐसे प्रक्रम पर पहुंच गया है जहां उसने उच्चतम न्यायालय के विषय में कोई कार्रवाई करने का प्रस्ताव किया है । संयोग से, विधि आयोग पूर्ववर्ती रिपोर्टों के ब्यौरों, और सिफारिशों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् इस अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पद्धति पर चिंतन-मनन करने से स्थिति में सुधार नहीं होगा । पद्धति में आमूल परिवर्तन करना होगा । इस बात का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है कि वर्तमान विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई विभिन्न रिपोर्टों में आमतौर पर यह कहा गया है कि विशेष मामलों को निपटाने के लिए विशेष अधिकरणों द्वारा न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के लिए सरकार

की विस्तृत सिफारिशें की गई हैं जिनका उच्चतम न्यायालय में बढ़ते हुए कार्य पर आशाजनक रूप से प्रभाव होगा।[20] अब तक जिस व्यापक दृष्टिकोण ~~(विचार)~~ का सुझाव दिया गया है और जिसका अब तक प्रयास किया गया है, वह यह है कि वर्तमान रिपोर्ट संक्षेप में स्थिति से निपटने के संबंध में है और वह बकाया मामलों और विलंब की समस्या को ~~निपटने के लिए~~ ऐसे एक और दृष्टिकोण से जिसकी अभी तक सिफारिश नहीं की गई है, निपटाने का प्रयास करेगी।

अध्याय 2

वर्तमान स्थिति

2.1. संविधान निर्माताओं ने, भारत के उच्चतम न्यायालय को अत्यंत विस्तृत अधिकारिता प्रदान करते समय, इस बात की परिकल्पना भी न की होगी कि उच्चतम न्यायालय में कार्य की झड़ी लग जाएगी। नि:संदेह रूप से, विस्तृत आयाम वाली अधिकारिता प्रदान करते समय, उन्होंने यह कल्पना की होगी कि न्यायालय इस तथ्य को भूले बिना अपनी अधिकारिता का प्रयोग संयम और विवेक से करेगा कि वह न तो अपील न्यायालय है और न ही वह प्रत्येक विधिक भूल के प्रतितोषण के लिए कोई न्यायालय है। भारत का उच्चतम न्यायालय एक ऐसा शिखर न्यायालय है जो विशेष रूप से, महत्वपूर्ण सांविधानिक मुद्दों पर कार्रवाई करता है और मानव अधिकारों के प्रहरी के रूप में कार्य करता है। विस्तृत अधिकारिता का दिया जाना, संविधान निर्माताओं की उस गहन इच्छा के प्रति निर्देश करता है कि न्याय के विफल होने की दशा में, न्यायालय किसी प्रक्रियागत अड़चन से नि:शक्त हुए बिना, अन्याय के क्षेत्र में पहुंचे और भूल का प्रतितोषण करने में समर्थ होगा। किंतु अधिकारिता प्रदान करने में यह स्पष्ट था कि उसका प्रयोग संयम और विवेक से करेगा, और सामान्यत: निष्पक्षता के सिद्धांत से प्रभावित रहेगा। विवेक में से स्वत: आरोपित अधिकारिता के प्रयोग पर ये परिसीमाएं नियंत्रण करने और कार्य भार को विनियमित करने के लिए पर्याप्त मानी गई हैं और विश्वासपूर्वक यह धारणा की गई थी कि न्यायालय, आने वाले कार्य को नियंत्रण में रखने और डाकेटों का प्रबंध करने और कम खर्चीली, शीघ्र, अनौपचारिक और सुलभ पद्धति का विकास करके न्याय प्रदान करने में समर्थ होगा। अनुच्छेद 39क का आदेश उसका मार्ग प्रशस्त करेगा।

2.2. क्या धारणा न्यायोचित थी ? औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता की पहली किरण के फूटने पर और देश के आजाद होने पर अंतिम न्याय निर्णयन के लिए उपलब्ध एक सर्वोच्च न्यायालय (प्रीवी कौंसिल) को देश में भारत के उच्चतम न्यायालय के रूप में प्रतिस्थापित करने पर और उसके साथ मूल अधिकारों के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता और न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रति सतर्क प्रतिबद्धता और प्रशासनिक/कार्यपालिक अन्याय के विरुद्ध राहत की उपलब्धता ने मुकदमों की बाढ़ ला दी । संविधान निर्माताओं का आशापूर्ण विश्वास था कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर, सात न्यायाधीशों द्वारा चालित भारत का उच्चतम न्यायालय आने वाले मुकदमों को प्रभावी ढंग से निपटाने में समर्थ होगा । जिन बातों को अनदेखा किया गया वे थीं विधिक व्यवस्था की औपनिवेशिक रचना, न्यायालय प्रक्रिया के जटिल और तकनीकी नियम, लंबे कभी समाप्त न होने वाले तर्क, न्यायिक नियुक्तियां करने में असामान्य विलंब और आधुनिक न्यायालय प्रबंध तकनीकियों की पूर्णत: अनुपलब्धता, इन सभी के एक साथ मिल जाने से बकाया मामलों का दैत्याकार स्वरूप सामने आ खड़ा हुआ, और भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष आने वाले वादों और संविवादों को निपटाने में लंबा विलंब होने लगा । समस्या ने ऐसे गंभीर आयाम ग्रहण कर लिए कि उससे पद्धति के अस्तित्व और विश्वसनीयता को गंभीर खतरा उत्पन्न हो गया । यद्यपि बढ़ते हुए बकाया मामलों ने सरकार और विधि आयोग का ध्यान आकृष्ट किया तथापि, समय के साथ साथ स्थिति भी बिगड़ती चली गई । इससे आज जो स्थिति बनी है उसे संकटग्रस्त न्यायालय कहा गया है ।[1] वर्ष 1986 में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति ने अत्यंत दु:ख और क्षोभ के साथ कहा था कि देश की न्याय व्यवस्था टूटने की कगार पर खड़ी है ।[2] यदि आंकड़ों की भाषा में कहा जाए तो स्थिति तब से और अधिक बिगड़ चुकी है ।

2.3. यह मान भी लिया जाए कि बकाया मामलों और विलंब की समस्या केवल भारत में ही विलक्षण नहीं है बल्कि उन सभी देशों में भी विकराल रूप धारण कर चुकी है जहां एंग्लो-सैक्सन न्यायशास्त्र प्रचलित है, तो भी बकाया मामलों की समस्या का निरीक्षण करने के लिए 1972 में अमरीका के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नियुक्त किए गए एक अध्ययन दल ने यह मत व्यक्त किया था कि कार्यभार एक ऐसे स्तर तक बढ़ गया है जो सुनवाई के लिए चुने गए मामलों को समाधानप्रद रूप में निपटाने के लिए न्यायमूर्तियों की क्षमता से बहुत परे है। उच्चतम न्यायालय की वर्ष 1973-74 की अवधि में उनके डाकेटों में 5,079 मामले संस्थित हुए और उनमें से 3,876 मामले निपटाए गए और शेष 1,203 मामले नई अवधि के खाते में डाल दिए गए। यहां यह उल्लेखनीय है कि अमरीकी उच्चतम न्यायालय किसी लिखित राय में कारण बताए बिना किसी मामले को निपटा सकता है। वर्ष 1983-84 की अवधि में 5,155 मामले संस्थित हुए जिनमें से 4,162 मामले निपटाए गए और केवल 163 मामलों में पूर्ण लिखित रायें दी गईं, शेष मामले या तो ~~कार्यालयों में~~ या ज्ञापन आदेशों द्वारा निपटाए जा रहे हैं।[3] हाउस आफ लार्ड्स में समस्या उतनी विकट नहीं है, फिर भी उनके लिए उनके समक्ष आने वाले सभी मामलों को निपटाना संभव नहीं है। हालांकि उनकी अधिकारिता अधिकांशतः अपीली है। अपने देश में तो समस्या बहुत ही भिन्न है।

2.4. उच्चतम न्यायालय में वर्षानुवर्ष में कार्यभार बढ़ता जा रहा है और बहुत कम अपवादों को छोड़कर; लंबित मामले बहुत ही कम घटे हैं। उच्चतम न्यायालय से सांख्यिकीय जानकारी चार शीर्षों में उपलब्ध है। वे मामले जो पहले ही ग्रहण किए जा चुके हैं अर्थात् जहां अपील करने की इजाजत दी जा चुकी है या जो उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र के साथ आए हैं और जिन्हें अंतिम सुनवाई वाले मामले कहा जाता है, ये जानकारी के

एक शीर्ष के अंतर्गत है । उच्चतम न्यायालय में सीधे फाइल की गई विशेष इजाजत-पिटीशनें-जानकारी के एक अन्य शीर्ष में आती हैं । प्रकीर्ण मामले जानकारी के तीसरे शीर्ष में आते हैं । संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशनें चौथे शीर्ष के अंतर्गत हैं ।

2.5. उच्चतम न्यायालय 26 जनवरी, 1950 को, जिस दिन संविधान लागू किया गया था, स्थापित किया गया था । वर्ष 1950 के अंत में स्थिति यह थी कि अंतिम सुनवाई वाले शीर्ष में 771 मामले लंबित थे । वर्ष 1986 के अंत तक यह संख्या बढ़ कर 80,837 हो गई । यह वृद्धि मोटे तौर पर 1000 प्रतिशत हुई है ।

2.6. बढ़ते हुए कार्य की सही स्थिति प्राप्त करने के लिए, उच्चतम न्यायालय की स्थापना वर्ष से प्रत्येक दशाब्दी के अंत में स्थिति की समीक्षा करना लाभप्रद रहेगा ।

पहली दशाब्दी (1951-60)

2.7. वर्ष 1956 तक न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या मुख्य न्यायमूर्ति और सात अन्य न्यायाधीश थी । 1956 में न्यायाधीशों की संख्या 7 से बढ़ा कर 10 कर दी गई । न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा कर बकाया मामलों की समस्या से निपटने का एक प्रयास किया गया । बढ़े हुए मामलों के शाश्वत रूप से बढ़ते ग्राफ पर इसका किंचित उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है (परिशिष्ट II में ग्राफ I और II देखिए)। उपलब्ध जानकारी को सारणीबद्ध किया गया है (देखिए परिशिष्ट I की सारणी 1) । सारणी की मार्फत संग्रह करने पर यह ~~प्रेरणा मिलती~~ है कि वर्ष 1952 और वर्ष 1953 के दौरान अंतिम सुनवाई वाले लंबित मामलों की संख्या में काफी कमी आई थी किन्तु उसके पश्चात् प्रति वर्ष बकाया मामलों का ढेर ऊंचा होता ही गया । वास्तव में इस दशाब्दी के दौरान

बकाया मामले चौगुने बढ़े । इसी दशाब्दी के दौरान, संविधान के आगमन के पश्चात् पहली बार, मूल अधिकारों के अतिक्रमण संबंधी शिकायतों के बारे में अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशनों का फाइल किया जाना धीरे धीरे कम हुआ था । इस निमित्त सारणीबद्ध की गई जानकारी यही बताती है । (देखिए परिशिष्ट I में सारणी II) । इसे ग्राफ के द्वारा ग्राफ III में संप्रदर्शित किया गया है । देखिए परिशिष्ट II में ग्राफ III) ।

2.8 अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत पिटीशनों के संस्थित किए जाने की ओर ध्यान दें तो उससे यह प्रकट होता है कि संस्थापन सुस्पष्टत: वर्षानुवर्ष बढ़ता ही गया है जो सारणीबद्ध जानकारी से प्रकट होगा (देखिए परिशिष्ट I में सारणी III) । ग्राफ में बताया गया वर्णन भी यही प्रकट करेगा । (देखिए परिशिष्ट II में ग्राफ IV) ।

2.9. इस अवधि के दौरान, प्रकीर्ण मामले जो 1955 में 512 थे बढ़कर 1960 में 3,194 हो गए । इससे पता चलता है कि पहली दशाब्दी में न्यायालय कार्य के अंतर्वाह को मुश्किल से संभाल पाया जिसके परिणाम-स्वरूप बकाया मामले बढ़ने लगे ।

दूसरी दशाब्दी (1961-70)

2.10. इस अवधि के दौरान, स्थिति आधी दशाब्दी तक और अधिक खराब हो गई । दशाब्दी के पहले चार वर्षों में अंतिम सुनवाई के मामलों का निपटान संस्थित किए गए मामलों से अधिक हुआ और इस प्रकार बकाया मामलों पर एक प्रहार तो हुआ किंतु 1965 से आगे तक स्थिति और अधिक खराब होती चली गई । बकाया मामलों ने वर्ष 1967 में भारी उछाल ली । संभवत:, यही वही दशाब्दी थी जिसमें 11 न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने एल०सी० गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य[4] और आर०सी० कूपर बनाम भारत संघ के मामले सुने और तब कुछ ही न्यायाधीश अन्य कार्य को निपटाने के

लिए बचे थे । बकाया मामले ढाई गुने बढ़ गए । यह सारणीबद्ध जानकारी से प्रकट होगा । (देखिए परिशिष्ट I में सारणी IV और परिशिष्ट II में ग्राफ V और VI) ।

2.11. इसी प्रकार से, इसी अवधि के दौरान विशेष इजाजत पिटीशनों का संस्थापन ढाई गुना बढ़ गया जो सारणी से स्पष्ट होगा (देखिए परिशिष्ट I में सारणी V) । ग्राफ के रूप में इसे परिशिष्ट II के ग्राफ VII में वर्णित किया गया है ।

2.12. रिट पिटीशनों का संस्थापन भी साथ ही साथ बढ़ा । उल्लेखनीय है कि इस दशाब्दी के आरंभ में, वर्ष 1960 में, न्यायाधीशों की संख्या पुनरीक्षित करके 10 से 13 कर दी गई थी जो मुख्य न्यायमूर्ति के अलावा थी । निपटान के विषय में उपलब्ध न्यायाधीशों की अतिरिक्त संख्या का प्रभाव वर्ष 1961, 1962 और 1963 में अनुभव किया गया किंतु उसके पश्चात् न्यायालय संस्थित किए जाने वाले मामलों का प्रतिकार नहीं कर सका ।

तीसरी दशाब्दी (1971-80)

2.13. मामलों के संस्थापन, निपटारे और बकाया मामलों ने जरा भी विश्राम नहीं लिया और इस दशाब्दी की प्रवृत्ति वही रही जो इसके पूर्व की दो दशाब्दियों में थी । इस दशाब्दी के दौरान जो चित्र उभर कर सामने आया उसे सारणीबद्ध किया गया है (देखिए परिशिष्ट I की सारणी VI , और परिशिष्ट II के ग्राफ VIII और IX) ।

वास्तव में बकाया मामले 400 प्रतिशत या चार गुने बढ़ गए । इस अवधि के दौरान, पुन:, वर्ष 1977 में न्यायाधीशों की संख्या पुनरीक्षित करके 13 से 17 कर दी गई । इस अवधि के दौरान जो उल्लेखनीय घटना घटी वह यह थी कि विधि आयोग की 45वीं रिपोर्ट के अनुसरण में, संविधान

के अनुच्छेद 133 का संविधान (तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1972 द्वारा संशोधन किया गया, जिसके द्वारा विवाद की विषयवस्तु के धनीय मूल्य के कारण उच्चतम न्यायालय में पहुंचने का अधिकार इस आशा से वापस ले लिया गया कि विवादग्रस्त विषयवस्तु के मी मूल्य के आधार पर तुच्छ मुकदमों का विलोपन हो जाएगा । यह आशा भी झूठी पड़ गई क्योंकि बढ़ते मामलों के विषय में जरा भी विश्राम दृष्टिगोचर नहीं हुआ । न ही न्यायाधीशों की बढ़ी हुई संख्या से कोई अंतर आया । स्थिति इतनी भयावह हो गई थी कि स्थिति से निपटने के लिए कोई प्रभावी कदम उठाना आवश्यक हो गया था । बकाया मामले न्याय-संस्थाओं पर अधिभार और उसके टूटने की संभावना के बारे में चिंतित प्रत्येक व्यक्ति को सचेत करने के लिए पर्याप्त थे । दो प्रयासों ने, एक तो उस फंदे को छोटा करना जिससे बड़ी संख्या में मामले उच्चतम न्यायालय में आते थे और दूसरा न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि करना, अपने सम्मिलित प्रभाव से स्थिति को बहुत ही कम प्रभावित किया । इस बीच संसद् ने उच्चतम न्यायालय (दांडिक अपीली अधिकारिता का विस्तारण) अधिनियम, 1970 अधिनियमित किया जिसने उच्चतम न्यायालय में दांडिक अपीलों के प्रवाह को मंद किया । यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि इस शताब्दी के दौरान मूल अधिकारों संबंधी प्रसिद्ध मामलों, केशवानंद भारती श्रीपादगल्वरु बनामकेरल राज्य और एक अन्य, 13 न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ द्वारा सुना गया था और उस समय अन्य मामलों की सुनवाई के लिए कोई न्यायाधीश नहीं बचा था । ये सभी बातें इस दशाब्दी के दौरान बकाया मामलों को 400 प्रतिशत तक बढ़ाने के लिए जिम्मेदार थीं ।

2.14. अंतिम सुनवाई की प्रतीक्षा कर रहे मामलों में वृद्धि के अलावा विशेष इजाजत पिटीशनों और मूल अधिकारों के अतिक्रमण की

शिकायत कर रही अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशनों के संस्थित किए जाने में भी वृद्धि हुई । जब भी विशेष इजाजत पिटीशनों के संस्थापन में वृद्धि हुई, साथ ही-साथ प्रकीर्ण मामले भी बढ़े ।

2.15. अल्पावधि की ऐसी घटना का भी अध्ययन उचित होगा जो मामलों के निपटारे की संख्या में पर्याप्त रूप से कमी आने में सहायक हुई । संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में अनुच्छेद 144क और अनुच्छेद 226क सम्मिलित किए गए । अनुच्छेद 144क में उपबंध किया गया था उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या जो किसी केंद्रीय विधि या राज्य विधि की सांविधानिक विधिमान्यता के बारे में किसी प्रश्न का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए अधिविष्ट होंगे, सात होगी । अनुच्छेद 226क ने अनुच्छेद 226 के अधीन किन्हीं कार्यवाहियों में केंद्रीय विधियों की सांविधानिक वैधता पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय की अधिकारिता को प्रत्याख्यापित किया है । अनुच्छेद 144क की अंतर्निहित प्रवृत्ति मामलों के निपटारे में विलंब करने की थी क्योंकि ऐसे कुछ विशेष मामलों को जिन्हें छोटी न्यायपीठों द्वारा सुना जा सकता था, सुने जाने के लिए अधिक न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे । बाद में अनुच्छेद 144क निकाल दी गई थी ।[7]

किन्तु अवधि के दौरान वह कानून की पुस्तक में बनी रही, उसने बकाया मामलों की वृद्धि में अपने तरीके से योगदान किया ।

चौथी दशाब्दी (1981-87)

2.16. बकाया मामलों का ग्राफ लगातार इस अवधि के दौरान लगातार और अनवरत गति से बढ़ा । इसका चित्रण सारणीबद्ध जानकारी में किया गया है । (देखिए परिशिष्ट 1 की सारणी VII और परिशिष्ट II के ग्राफ X और XI) ।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि वर्ष 1981-86 के लिए अंतिम स्तंभ में दिए गए अंकों में लंबित प्रकीर्ण मामले सम्मिलित नहीं हैं जबकि वर्ष 1987 के लिए अंतिम स्तंभ में दिए गए अंकों में विशेष इजाजत पिटीशनें, अंतिम सुनवाई वाले मामले और प्रकीर्ण मामले सम्मिलित हैं । संक्षेप में विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 1987-88 की वार्षिक रिपोर्ट में 31-12-1987 को उच्चतम न्यायालय में लंबित मामलों के बारे में सरकारी जानकारी निम्नलिखित रूप में दी गई है :[8]

क्रम सं0	न्यायालय का नाम	स्थिति निम्नलिखित तारीख को	लंबित मामलों की संख्या
1.	उच्चतम न्यायालय		
	(i) नियमित सुनवाई वाले मामले	31-12-87	39,316
	(ii) ग्रहण किए गए मामले	यथोक्त	51,315
	(iii) प्रकीर्ण मामले	यथोक्त	85,117
	योग-		1,75,748
2.	उच्च न्यायालय	31-12-86	14,95,814

इस अपरिहार्य निष्कर्ष की पुष्टि के लिए कि वर्षानुक्रम में, उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों का ग्राफ निर्बाध रूप से बढ़ता ही गया है, यह कहा जा सकता है कि वर्ष 1983 के अंत में, उच्चतम न्यायालय में 1,36,313 मामले लंबित थे ; वर्ष 1987 के अंत तक यह अंक बढ़कर 1,75,748 हो गया[9], इसका अर्थ यह है कि पांच वर्ष की अवधि में, बकाया मामलों में लगभग 40,000 मामले बढ़ गए ।

2.17. वर्ष दर वर्ष बकाया मामलों के परिमाण में अनवरत वृद्धि के अलावा, अधिक संतापकारी तथ्य यह है कि उच्चतम न्यायालय में मामले लाए जाने के पश्चात् वे दस वर्ष से भी अधिक समय तक निपटाए नहीं जाते हैं। यह इसमें नीचे दी गई सारणीबद्ध जानकारी से स्पष्ट होगा :[10]

लंबित मामलों की स्थिति: भारत का उच्चतम न्यायालय

तारीख	3 वर्ष से अधिक समय से लंबित नियमित सुनवाई के मामले	5 वर्ष से अधिक समय से लंबित नियमित सुनवाई के मामले	10 वर्ष से अधिक समय से लंबित नियमित सुनवाई के मामले
1-1-88	27,014	16,852	3,811

इस बात की कोष्ठक में मिलावट किरनी भयावह है कि उच्चतम न्यायालय में 10 वर्ष से अधिक समय से कोई मामला लंबित है और इस तथ्य का उल्लेख करना भी कि उच्च न्यायालय मामले के निपटारे में पर्याप्त रूप से लंबा समय लेता है तो ऐसी स्थिति में मामला मूल अधिकारिता वाले न्यायालय में अपने प्रारंभ से लगभग बीस वर्ष से अधिक समय से लंबित ~~रहता है~~ होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति न्याय की खोज में पूरे बीस वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहे तो यह अपने आप में यह स्वीकार करने के लिए पर्याप्त है कि पद्धति असफल हो चुकी है।

2.18. वर्ष 1981-87 की अवधि के दौरान दो मामलों ने न्यायालयों में असम्यक रूप से लंबा समय लिया। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980[11] को चुनौती देने वाला मामला न्यायालय में दिसंबर, 1980 के प्रथम सप्ताह में संस्थित किया गया। न्यायालय उस पर ~~मई~~ लगभग ग्रीष्म अवकाशकाल ~~के आरंभ~~ मई, 1981 तक विचार करता रहा। इसी प्रकार न्यायाधीशों का मामले[12] के नाम से विख्यात मामले में, सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 4 अगस्त, 1981 से लेकर लगभग वर्ष के अंत तक सुनवाई की। केवल मामले एक या दो

आनुषंगिक मामलों की सुनवाई के लिए बड़ी संख्या में न्यायाधीश लगे रहे। इस प्रकार की अंतर्निहित प्रकृति ने बकाया मामलों को और अधिक बढ़ाया है।

2.19. इस अवधि के दौरान एक अन्य महत्वपूर्ण घटना सामाजिक कार्रवाई के मुकदमों का प्रादुर्भाव और पत्र (अनिस्त) विषय अधिकारिता का आगमन थी। उच्चतम न्यायालय को बड़ी संख्या में पत्रों द्वारा पिटीशनें प्राप्त हुई और उसके साथ ही सामाजिक कार्रवाई के मुकदमें आरंभ हो गए। इन अत्यावश्यक मामलों के निपटारे ने अंतिम निपटारे के लिए प्रतीक्षारत नियमित सुनवाई वाले मामलों को इतना पीछे ढकेल दिया कि वे बहुत कुछ बकाया मामलों में सम्मिलित हो गए।

2.20. भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने अस्तित्व काल में वादों और संविवादों के निपटारे का व्यापक सर्वेक्षण से उसके भविष्य के बारे में गंभीर संदेह उठता है। स्थिति उनके सरल-हल की अवज्ञा करके दिनोंदिन अधिक से अधिक जटिल होती जा रही है। उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों की समस्या ने उच्चतम न्यायालय को ही नहीं बल्कि भारत सरकार, विधि व्यवसायियों और विधि शास्त्रियों को भी विक्षुब्ध किया है। विधि आयोग ने भी बार बार अपना ध्यान इस किसी को भी नापसंद इस स्थिति पर केंद्रित किया है। सुधार कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

2.21. स्थिति इतनी निराशाजनक हो गई है कि हाल ही में उसने उच्चतम न्यायालय की एक न्यायपीठ को इतना चिढ़ा दिया कि उसने उन वादार्थियों के लिए उच्चतम न्यायालय के दरवाजे लगभग बंद कर दिए जो संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उसकी अधिकारिता का आश्रय ले रहे थे जो कि मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए न्यायालय में जाने की गारंटी प्रदान करती है। अर्जीदार दिल्ली नगर निगम के निर्धारण और संग्रहण विभाग के उप निर्धारक और समाहर्ता द्वारा जारी किए एक आदेश को अभिखंडित

करने के लिए सरशियोरेराई प्रकृति की रिट जारी करने के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय में पहुंचे थे। न्यायालय ने मामले के गुणागुण पर कोई राय व्यक्त किए बिना पिटीशन को निपटाने की कार्यवाही की और अर्जीदारों को यदि वह उचित समझें तो, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशन फाइल कर सकते हैं। इस रीति से निपटाने में न्यायालय का हृदयविदारक संप्रेक्षण उल्लेख करने योग्य है :

> "इस न्यायालय के पास उन मामलों को भी निपटाने का समय नहीं है जो केवल उसके द्वारा और न कि किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा विनिश्चित किए जाते हैं। बड़ी संख्या में मामले 10 से 15 वर्ष से लंबित हैं। यदि इसके पश्चात् इस न्यायालय में कोई नया मामला फाइल नहीं भी किया जाता है तो भी इस समय उपलब्ध न्यायाधीशों की सहायता से सभी लंबित मामलों के निपटाने के लिए 15 वर्ष से अधिक समय लग सकता है।"[13]

इसके पूर्व उच्चतम न्यायालय की एक अन्य न्यायपीठ ने पिटीशन अस्वीकार करते समय अर्जीदार को इस बात की छूट देते हुए कि वह संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है यह मत व्यक्त किया था कि दस वर्ष पुरानी सिविल अपीलें और दांडिक अपीलें ध्यान की प्रतीक्षा में सिसक रही हैं। यदि इस पहलू की गंभीरता को पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किया गया तो हमारे वादार्थियों को बहुत विपत्ति और असीम कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।"[14] उच्चतम न्यायालय की शरण में आए पक्षकारों को यह सलाह दी गई कि वे उच्च न्यायालय की शरण में जाएं, क्योंकि उच्चतम न्यायालय के डाकेट इतने ठुंसे पड़े हैं कि वे शताब्दी की समाप्ति तक भी बकाया मामलों को नहीं निपटा सकते हैं। क्या इस हल का कोई औचित्य है ? उच्च न्यायालयों में स्थिति उच्चतम न्यायालय से भी अधिक निराशाजनक है। स्थिति का जायजा नीचे दी गई सारणीबद्ध जानकारी से लिया जा सकता है :[15]

उच्च न्यायालय

	वर्ष के आरंभ में लंबित मामले	वर्ष के दौरान संस्थित मामले	वर्ष के दौरान निपटारे गए	वर्ष के अंत में लंबित मामले
85	12,51,945	7,31,543	6,05,698	13,77,790
86	13,77,790	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	14,95,814
87	14,95,814	यथोक्त	यथोक्त	उपलब्ध नहीं

उच्च न्यायालयों की स्थिति उच्चतम न्यायालय से अपेक्षाकृत अधिक खराब प्रतीत होती है । यदि संविधान निर्माताओं ने उच्चतम न्यायालय को उस दशा में जहां कोई मूल अधिकारों के भंग की शिकायत करता है राहत प्रदान करने की मूल अधिकारिता प्रदान की है तो क्या वह उन्हें इस अल्प आधार पर नामंजूर कर सकता है कि उच्चतम न्यायालय अपने स्वयं के डाकेटों का प्रबंध करने में असमर्थ है और पक्षकारों को उच्च न्यायालयों में जाने का निदेश दे सकता है जहां स्थिति दुखद रूप में निराशाजनक है ? क्या वादार्थियों को इसी तरह मारे मारे फिरना पड़ सकता है ? समस्या का हल न्यायालयों के द्वार बंद कर देने में नहीं है । उपर्युक्त आधार पर पिटीशन ग्रहण करने से इंकार करने के विषय में उच्चतम न्यायालय के इस दृष्टिकोण के प्रति, अन्य लोगों में से, उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन की तीखी प्रतिक्रिया यह थी कि उच्चतम न्यायालय के पास तो मामलों के निपटाने के लिए समय ही नहीं है । इसका हल तो अन्यत्र ढूंढना होगा ।

अध्याय 3

विलंब के कारण और उपचारी उपायों पर पिछले प्रयास

3.1 नैदानिक प्रयास निर्विवादतः यह प्रकट करते हैं कि तंत्र इतना बीमार है कि उसकी मरम्मत असंभव है । ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो यह न कह सकता हो कि बकाया मामलों के अंबार और निपटारे में विलंब के रूप में इस बीमारी ने पद्धति के जीवाणु को खा डाला है और उसका प्रत्येक अंग बीमार है, बीमारी विषालु ग्रंथियों की भांति दिखाई देने वाले बकाया मामलों के बड़े ढेर के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है । अनेक व्यक्तियों और निकायों ने उन कारणों के लिए जिनसे बीमारी उत्पन्न हुई है, अपने अपने विश्लेषण प्रस्तुत किए हैं । उनका संक्षेप में वर्णन करना अप्रसंगिक नहीं होगा ।

3.2 न्याय व्यवस्था से प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में विलंब और फंसे पड़े मामलों और निपटारे के लिए जोर जोर से कराहते लंबित मामलों से दुखी है । इससे, सांविधानिक सरकार की कार्यकरण में अस्तव्यस्तता फैलने की संभावना है, उदाहरण के लिए, सरकार के बहुत सारे विनिश्चय न्यायालयों में प्रश्नगत हो रहे हैं और मामले के लंबित रहने के दौरान, न्यायालय द्वारा प्रदत्त अंतरिम राहत से सरकारी तंत्र ठप्प होता जा रहा है और संपूर्ण सांविधानिक तंत्र को निष्क्रिय बना रहा है । न्यायालयों ने अपने अंतरिम आदेशों द्वारा 400 करोड़ रुपयों के करों के संग्रह पर रोक लगा रखी है । अर्थ व्यवस्था घाटे में क्यों है और घाटे के बजट की पूर्ति क्यों नहीं होती है । न्यायालय की कार्यविधि से नागरिकों को उपलब्ध हो रहे न्याय की मात्रा और क्वालिटी प्रभावित हुई है । न्यायालय जर्जर हो गया है और न्यायिक प्रक्रिया की विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा दांव पर लगी हुई है । न्याय करने में विलंब एक लतीफा बन गया है ।

संपादकीय लिखे जा रहे हैं :-

"अंधे हो तो क्या हुआ, लंगड़े तो नहीं हो ?"

(ओके, ब्लाइंड, बट व्हाई सो स्लो ?)

3.3 अनेक देशों में और संपूर्ण इतिहास में जब भी विधि में विलंब हुआ है तभी उसकी कहानी या तो त्रासदी बन गई है या कामेडी । चार्ल्स डिकन्स की कृति "ब्लीक हाउस" न्याय व्यवस्था पर एक पैरोडी है और उसमें विधि में विलंब पर व्यंग्य को सर्वत्र स्वीकार किया गया है । यह एक कामेडी थी । हैमलेट लोगों पर जिन सात भारों को गिनाता है उसमें वह विधि में विलंब को सूची में पांचवां स्थान देता है । यह त्रासदी का एक हिस्सा है । इसी प्रकार, रूसी साहित्यकार चेखव और फ्रांसीसी साहित्यकार मोलियर्स ने भी विधि में विलंब विषय पर त्रासदी की रचनाएं की हैं । गिल्बर्ट और सुलीवन ने अपने गीतों में विलंब पर व्यंग्य कसे हैं । ये इस बात के सूचक हैं कि समस्या युगों पुरानी है और लोग इसे सहन कर रहे हैं । समस्या तो अब इसके विस्तार की है जो उसने अर्जित कर रखी है । समस्या के पुरानेपन और उससे होने वाली कठिनाई पर ध्यान न भी दिया जाए तो भी हितबद्ध समूह के पास समय है और उन्होंने पुन: कुछ उपचारी उपायों का सुझाव दिया है जो यदि समस्या का हल नहीं कर सकें तो भी उसे ~~चलाने लायक~~ नियंत्रणीय बना सकते हैं ।

3.4 प्रथम विधि आयोग में सुख्यात वकील और श्रेष्ठ न्यायाधीश थे । उन्होंने उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों के विषय में विचार करते हुए समय यह महसूस किया था कि सेवा की अनाकर्षक शर्तें विधिज्ञ परिषद् की श्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित न करने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं और इसलिए उनका विचार था कि उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठ में बार (वकीलों में से) के प्रतिष्ठित सदस्यों को ऐसे समय में सीधे निमंत्रित करके भर्ती किया जाना चाहिए जब उन्हें न्यायपीठ में में काफी लंबा कार्यकाल बिताने की आशा हो ।[2] उच्चतम न्यायालय

के न्यायाधीश की परिलब्धियों में किसी वृद्धि की सिफारिश न करने पर भी आयोग ने यह सिफारिश की थी कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संदेय पैंशन में वृद्धि की जानी चाहिए ---'।[3] प्रसंगवश यह मत भी व्यक्त किया गया कि बकाया मामलों के इकट्ठा होने पर लगातार पर्यवेक्षण करते रहना चाहिए जिससे कि यदि आवश्यक हो तो 'न्यायालय की सदस्य संख्या में और वृद्धि करने की आवश्यकता पर कोई विनिश्चय किया जा सके'।[4] पुनश्च: यह विश्वास किया गया है कि इन सुझावों से आगे चलकर बकाया मामले कम होंगे। इस प्रकार जिन कारणों का पता चला है उनमें न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या अपर्याप्त होना और उच्चतम न्यायालय में ऐसे व्यक्ति नियुक्त किए जाना है जिनमें अभिप्रेरित प्रतिभा का अभाव है, क्योंकि प्रतिभावान व्यक्ति न्यायधीश के रूप में कार्य करने के बदले में जो प्रतिकर पाते हैं वह अनाकर्षक और अपर्याप्त है।

3.5 समय बीतने पर, एक और ऐसी अप्रिय बात उभर कर सामने आई जो बकाया मामलों के बढ़ने के प्रमुख कारणों में से एक थी। समस्या के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी एक कारण उच्चतम न्यायालय में समय पर रिक्त स्थानों को भरने में असामान्य विलंब है। संलग्न ग्राफ में पूरी तरह से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि रिक्त स्थानों को भरने में असामान्य विलंब हुआ है। इस बाबत वर्ष 1981 से 86 तक की जानकारी एकत्र की गई है जिसे सारणीबद्ध किया गया है।(देखिए परिशिष्ट 1 में सारणी VIII)। गणितीय दृष्टिकोण से पता चलेगा कि रिक्तियों को भरने में हुए विलंब से इस अवधि के दौरान 8,419 मानव दिवसों की हानि हुई है। यदि रिक्तियां किसी अस्पष्टीकृत विलंब के बिना और मानव-दिवसों की हानि को बचा कर, भरी गई होतीं तो न्यायालय 25,678 मामले निपटाने में समर्थ होता और इससे बकाया मामलों के बढ़ते हुए ग्राफ में गिरावट आती।

3.6 विधि आयोग ने इस पहलू की गहन समीक्षा की है और इसका विशद वर्णन किया भी है [5]। यह स्थिति उस समय और अधिक विचित्र हो जाती है जब इस बात का उल्लेख किया जाता है कि संविधान के आगमन के समय से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सदस्य-संख्या में पुनरीक्षण करके बढ़ोत्तरी की जाती रही है जो 1956 में 7 + 1 से आरंभ होकर 1986 में 25 + 1 हो गई फिर भी यह केवल कागजी कार्रवाई रही क्योंकि सदस्य संख्या तो बढ़ी किन्तु नए सृजित पद वर्षों तक नहीं भरे गए। इस बात की व्याख्या करने के लिए यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में पुनरीक्षण करके वृद्धि 9 मई, 1986 से प्रभावी हुई [6] तथापि लगभग दो वर्ष की अवधि में अतिरिक्त न्यायाधीशों की संख्या में से एक भी पद नहीं भरा गया। वास्तव में इस समय पूर्वतर सदस्य संख्या का एक पद अभी भी भरे जाने के लिए शेष रह गया है। न्यायाधीशों की सदस्य संख्या के पुनरीक्षण द्वारा वृद्धि एक निश्चित धारणा पर आधारित है कि न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या बढ़ते हुए कार्य पर नियंत्रण रखने और बकाया मामलों को प्रभावी ढंग से निपटाने में असमर्थ होगी। अतः इस समस्या को हल करने का एक ही रास्ता है कि न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाई जाए। यदि वृद्धि प्रति वर्ष प्रति न्यायाधीश द्वारा मामलों के निपटारे की रीति में वैज्ञानिक ढंग से निकाली जाती है और उससे एक निश्चित् अंक प्राप्त होता है तो उन रिक्तियों के न भरे जाने का निर्विवादतः अर्थ यह होगा कि अपर्याप्त संख्या इस तथ्य के होते हुए भी अपर्याप्त ही बनी रहेगी कि न्यायाधीशों की संख्या के पुनरीक्षण से वृद्धि हुई है। सदस्य संख्या के पुनरीक्षण द्वारा वृद्धि के लिए केवल विधान पारित करने से शायद ही कोई परिणाम निकलेगा। जिस क्षण सदस्य संख्या के पुनरीक्षण द्वारा वृद्धि को मंजूर किया जाता है तभी से, नए सृजित पदों के भरने के लिए कदम तुरंत उठा लिए जाने चाहिए ताकि सदस्य-संख्या के पुनरीक्षण द्वारा वृद्धि के पीछे जो धारणा है वह वैज्ञानिक ढंग से काम कर सके।

3.7 यह बात तुरंत मान ली जानी चाहिए कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के पास काम अधिक है और रिक्तियों के न भरे जाने से उन न्यायाधीशों पर जो पदासीन हैं, असहनीय भार पड़ा है। सोमवार ग्रहण करने के लिए आरक्षित है और औसतन 50 विशेष इजाजत पिटीशनें। रिट पिटीशनें प्रत्येक खंडपीठ के जिसमें दो न्यायाधीश होते हैं, समक्ष ग्रहण किए जाने के लिए रखी जाती हैं। पढ़ने के लिए इसके एक हजार से अधिक पृष्ठ होते हैं। अगले तीन दिनों में, औसतन, 10 से 15 मामले ग्रहण किए जाने के लिए रखे जाते हैं और इसके साथ ही प्रत्येक न्यायपीठ को अंतिम सुनवाई के मामले भी सौंपे जाते हैं। जब इन मामलों की सुनवाई हो जाती है तब निर्णय भी सुनाने होते हैं। और आमतौर पर उच्चतम न्यायालय में निर्णय घरों पर तैयार किए जाते हैं। इस पद्धति से शनिवार और रविवार को भारी कार्यभार हो जाता है। शुक्रवार को पुनः, ग्रहण किए जाने के लिए बड़ी संख्या में मामले रखे जाते हैं और न्यायाधीशों को अपनी रायें तैयार करने तथा राय के लिए परिचालित अपने साथियों के निर्णयों का अनुमोदन करने के लिए शनिवार-रविवार को कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। न्यायाधीशों के पास पढ़ने और अपनी ओर से अन्वेषण करने का बहुत ही कम समय बचता है। कार्य के इस असहनीय भार ने एक भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति को यह कहने के लिए प्रेरित किया कि रिक्तियों को भरने में सरकार की ओर से विफलता ने असहनीय भार डालने के लिए विद्यमान न्यायाधीशों के प्रति क्रूरता का कार्य किया है।[7]

3.8 न्यायाधीशों की संख्या के पुनरीक्षण द्वारा वृद्धि करने के प्रश्न पर मतवैभिन्य है। कुछ लोगों की राय है कि यदि न्यायाधीशों की संख्या, पुनरीक्षण करके, बहुत अधिक कर दी जाती है और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश दो-दो की न्यायपीठों में बैठते हैं तो अपरिहार्य रूप से राय में विवाद उत्पन्न होगा और न्याय की क्वालिटी गिरेगी। इस दृष्टिकोण में सचाई का तत्व विद्यमान है। ऐसे अन्य लोग भी हैं जो यह विश्वास करते हैं कि स्थिति इतनी दुखदायी हो गई है कि ~~न्यायम~~

न्यायाधीशों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि करने में यदि कोई जोखिम भी है तो भी इस जोखिम को तो उठाना ही होगा । निस्संदेह, दोनों विचारों के प्रस्तावक,जोरदार शब्दों में यह दावा करते हैं कि रिक्तियां यथासंभव शीघ्र भरी जानी चाहिए ।

3.9 यहां इस बात का संकेत किया जा सकता है कि रिक्तियों को भरने के लिए नियुक्तियां करने के कार्य में यह असफलता अनेक चर्चाओं की विषयवस्तु रही है । इसके पूर्व कई अवसरों पर ~~एक पवित्र आकांक्षा~~ [यह पवित्र कामना] अभिव्यक्त की गई थी कि रिक्तियां यथा संभव शीघ्र भर ली जानी चाहिए । ~~आकांक्षा~~ [यह कामना] अपूर्ण ही रही आई । परिणामस्वरूप, विधि आयोग को समस्या पर नए सिरे से विचार करने के लिए कहा गया और घिसे-पिटे संप्रेक्षणों से बचते हुए, रिक्तियों को शीघ्रता से भरने की समस्या से निपटने के लिए एक उपचार का सुझाव दिया गया ।[8] यह आशा करना न्यायसंगत होगा कि संबद्ध सरकार रिक्तियों को भरने के लिए पर्याप्त, प्रभावी और त्वरित कदम उठाएगी ।

3.10 मामलों के निपटारे में विलंब और परिणामस्वरूप बकाया मामलों के एकत्र होने के कारणों का एक विश्लेषण एक विधि शास्त्री द्वारा किया गया था । उनकी यह राय है कि यह मान लेने पर कि ऐसी विधिक पद्धति जो प्राधिकृत और उचित विनिश्चयों तक पहुंचने के लिए एक निश्चित समय का लगना अपरिहार्य बनाती है, को देखते हुए, हमें अधिक कार्यभार की समस्या पर विचार उन सांस्थानिक बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए जिन्हें उनकी ही प्रकृति के अनुसार, समस्या के एक पहलू के रूप में अभियान को बढ़ाने की दृष्टि से बदला जा सकता है ।' उसने विलंब के में सहायक बातों को चार प्रवर्गों में वर्गीकृत किया है : (i) सरकार द्वारा कारित विलंब (ii) न्यायालय द्वारा कारित विलंब, (iii) बार (विधि व्यवसायियों) द्वारा कारित विलंब, और (iv) वादार्थियों द्वारा कारित विलंब । सरकार द्वारा कारित विलंब शीर्ष

के अधीन, उसने न्यायापालिका के सभी स्तरों के लिए न्यायालय प्रबंध का एक मैनुअल बनाने का सुझाव दिया और यह भी सुझाव दिया कि न्यायिक अधिकारियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए । उसने न्यायालय प्रबंध की नई और तुलनात्मक पद्धतियों को समझने के लिए संगोष्ठियां आयोजित करने की भी वकालत की । 'विधि व्यवसाय द्वारा कारित विलंब' शीर्ष के अधीन, वह कहता है कि कार्य के समान वितरण के साथ साथ अदालती आदतें मामलों के निपटारे में लिए गए समय को बढ़ाने में सहायक होती हैं जिससे बकाया मामले बढ़ते चले जाते हैं । 'वादार्थियों द्वारा कारित विलंब' शीर्ष के अधीन, उसने एक प्रश्न उठाया है कि क्या बड़ी संख्या में मुकदमाबाजी जो संविधान के आगमन से ही परिलक्षित हुई है, अधिकारों और विधि के ज्ञान के प्रति जागरूकता में अभिवृद्धि प्रदर्शित नहीं करती ।[10]

3.11 श्री एच०एम० सीरवाई उच्चतम न्यायालय : उसका कार्यकरण और विलंब की समस्या' विषय-पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं । उनका विश्लेषण उन विभिन्न कारणों को उद्घाटित करता है जो उनके अनुसार, वर्तमान स्थिति के निर्माण में सहायक हुए हैं । संक्षेप में कहा जाए तो,- मामले के कथन को उच्चतम न्यायालय द्वारा अनावश्यक रूप से छोड़ दिया जाता है और बहस की रूपरेखा मामले के अच्छी तरह लिखे गए कथन का पर्याप्त प्रतिस्थापन नहीं करती है । उसके द्वारा प्रस्तुत किया गया एक अन्य कारण यह है कि न्यायाधीश साधारणतः, और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश विशेष रूप से, मामले में बहुत अधिक हस्तक्षेप करते हैं । उसके अनुसार, तीसरा कारण यह है कि जब तक न्यायाधीश का मत स्पष्ट नहीं है, विधि का अच्छा ज्ञान नहीं है, उसके पास सादी और स्पष्ट बात कहने की और ध्यानपूर्वक बात सुनने की चुबी नहीं है, काउंसेल से टकराव से बचने की योग्यता नहीं है तब तक मामलों के निपटारे में विलंब अपरिहार्य है । उसके अनुसार एक और कारण यह है कि कुछ न्यायाधीशों का कुछ मामलों में, जैसे श्रम विधि के मामलों में, पूर्वाग्रह होता है । उसके अनुसार

न्यायाधीश की मान्यताओं से मुक्त, निष्पक्ष होना चाहिए क्योंकि भारत के संविधान का कोई नियत "दर्शन" या उसकी कोई नियत "मान्यता" नहीं है।[12] उसके अनुसार-विलंब के लिए अगला कारण सम्मति और विसम्मतिपूर्ण निर्णयों की भरमार है।[13] इसके लिए जिस रामबाण दवा की सिफारिश की गई है वह निर्विवाद रूप से प्रीवि कौंसिल और हाउस आफ लार्ड्स का अनुकरण करना है। उन्होंने इस बात का अनुमोदन नहीं किया कि न्यायपालिका के महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का अभाव है।

3.12 मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा उठाए गए कदमों पर अब विचार किया जाए। ये निम्नलिखित हैं। बकाया मामलों की समस्या से निपटने के लिए साध्य और साधनों का सुझाव देने के लिए वर्ष 1978-79 में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा एक समिति का गठन किया गया था। यह ज्ञात नहीं है कि इस समिति ने कोई रिपोर्ट प्रस्तुत की या नहीं। बढ़ते जा रहे बकाया मामलों के स्वरूप से चिंता बढ़ रही थी अतः अन्य लोगों के साथ, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की एक पूर्ण न्यायालयीन बैठक वर्ष 1983 में तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में हुई जिसमें कुछ ऐसे मामलों को विनिर्दिष्ट करने का संकल्प किया गया जिन्हें एकल न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा निपटाया जा सकता है। इस विनिश्चय का महत्व इस उपबंध के प्रकाश में आंका जा सकता है कि सामान्यतः उच्चतम न्यायालय के समक्ष आने वाला प्रत्येक मामला किसी ऐसी खंडपीठ के समक्ष सुना जाता है जिसमें मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नाम-निर्दिष्ट कम से कम दो न्यायाधीश होते हैं।[14] इस उपबंध की अनुपयुक्तता इस तथ्य से ही समझी जा सकती है कि उच्च न्यायालय में अनेक मामले एकल न्यायाधीश द्वारा निपटाए जाते हैं किन्तु यदि उच्च न्यायालय के किसी एकल न्यायाधीश के किसी विनिश्चय के विरुद्ध अपील के लिए कोई विशेष इजाजत पिटीशन दाखिल की जाती है तो जैसा कि ऊपर बताया गया है, उसकी सुनवाई किसी खंडपीठ द्वारा की जाएगी

जिसमें कम से कम दो न्यायाधीश होंगे । अत: पूर्ण न्यायालय ने ऐसे मामले विनिर्दिष्ट किए जिन्हें उच्चतम न्यायालय में किसी एकल न्यायाधीश द्वारा सुना जा सकता है । उच्चतम न्यायालय के इस विनिश्चय में निहित उद्देश्य की पूर्ति के लिए, उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 145 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया को सामान्यत: विनियमित करने के लिए आदेश 7 के नियम 1 में एक परंतुक की रचना की जो इस प्रकार है :-

"आदेश 7, नियम 1. - इन नियमों के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रत्येक वाद, अपील या मामला मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी ऐसी न्यायपीठ द्वारा सुना जाएगा जिसमें कम से कम दो न्यायाधीश होंगे :

परंतु, फिर भी ; निम्नलिखित प्रवर्गों के मामले अधिविष्ट किसी ऐसे न्यायाधीश द्वारा जिसे मुख्य न्यायमूर्ति एकल रूप से नामनिर्दिष्ट करे, सुना और निपटाया जाएगा :

(1) किसी उच्च न्यायालय के किसी एकल न्यायाधीश या किसी अधिकरण के किसी सदस्य के जो एकल रूप से अधिविष्ट हों, आदेशों या विनिश्चयों या आदेशों में से उद्भूत विशेष इजाजत पिटीशनें,

(2) जमानत संबंधी आवेदन,

(3) प्रतिस्थापन संबंधी आवेदन जो आदेश 6 के नियम 1(15) के अधीन आने वाले आवेदनों से भिन्न हों,

(4) अभियोजनेतर सम्मन,

(5) न्यायालय फीस का संदाय करने से छूट के लिए आवेदन,

(6) न्यायालय फीस का संदाय करने या वचनबंध, बैंक गारंटी या प्रतिभूति देने के समय के विस्तार के लिए आवेदन,

(7) किसी अपील के, समझौता पिटीशन के रूप में, निपटारे के लिए आवेदन,

(8) विशेष इजाजत पिटीशनों, अपीलों या रिट पिटीशनों के प्रत्याहरण के लिए आवेदन ।" ।[15]

संविधान के अनुच्छेद 145 द्वारा प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति इस अर्थ में सशर्त है कि न्यायालय राष्ट्रपति के अनुमोदन से ही नियम बना सकता है। राष्ट्रपति ने इस नियम को अपना अनुमोदन प्रदान कर दिया है । नियम 30 जुलाई, 1983 से प्रवृत्त हो गया है । तब से 5 पांच साल की अवधि गुजर चुकी है और अभी भी यह खेद का विषय है कि नियम कार्यान्वित नहीं किया गया है । यदि इस नियम को कार्यान्वित किया जाता है तो सोमवार को ग्रहण किए जाने वाले मामलों की सुनवाई करने वाले 8 न्यायालयों के बदले 17 या 18 न्यायालय उनकी सुनवाई कर सकेंगे और इससे आवर्त कई गुना बढ़ जाएगा । इस नियम को कार्यान्वित करने के प्रति उदासीनता के पीछे क्या कारण है, यह सही सही बता पाना संभव नहीं है । संभवत: उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन ने इसके कार्यान्वयन का विरोध किया है, हालांकि, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति से चर्चा के दौरान उन्होंने यह स्वीकार किया कि बार (वकीलों) ने इस नियम के कार्यन्वयन में सहयोग देने में कम आनाकानी की है । दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह रह जाता है कि नियम कार्यान्वित नहीं किया गया है। वास्तव में, न्यायालय के प्रति पूर्ण आदर प्रदर्शित करते हुए, यह उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय स्वयं इस बात का दावा करता है कि कि उसने बकाया मामलों की समस्या

से निपटने के लिए कुछ कदम उठाए हैं । ये कदम निम्नलिखित हैं :-

(i) एक जैसे विधि के प्रश्न वाले मामलों को, एक ग्रुप में रखा जाता है और ग्रुपों में सूचीबद्ध किया जाता है जिससे उन सभी को एक साथ निपटाया जा सके ।

(ii) अधिकांश मामलों में, अपील अभिलेख के मुद्रण से अभिमुक्ति दे दी गई है जिससे मुकदमों में पक्षकारों के समय और खर्च में बहुत बचत होती है । दांडिक अपीलों में, अपीलार्थियों के काउंसेल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अभिलेख के मुद्रण में लगने वाले समय को बचाने के लिए साइक्लोस्टाइल अभिलेख फाइल करें जिससे कि मामले की सुनवाई शीघ्र हो सके ।

(iii) न्यायालय का समय बचाने के लिए मुख्य न्यायमूर्ति न्यायालय के कार्य के घंटों के पश्चात् "मैन्शनिंग" के मामले ग्रहण करते हैं जिसमें प्रतिदिन कम से कम लगभग एक घंटा लग जाता है ।

(iv) उच्चतम न्यायालय नियमों को संशोधित करके माननीय मुख्य न्यायमूर्ति को (चैंबर में) और रजिस्ट्रार को कुछ प्रकार के मामले, जिनकी सुनवाई पहले न्यायालय में की जाती थी, निपटाने के लिए सशक्त किया गया है । इससे न्यायालय का समय बचेगा ।

(v) माननीय मुख्य न्यायमूर्ति विशेषज्ञ न्यायपीठों का गठन करते हैं और शीघ्र निपटान के लिए, विशिष्ट प्रकार के मामले, ऐसी विशेषज्ञ न्यायपीठों को सौंपे जाते हैं ।

(vi) उच्चतम न्यायालय में शीघ्र ही कंप्यूटर तकनीक का उपयोग किया जाने वाला है जिससे कि लंबित मामलों की संख्या पर्याप्त रूप में कम हो जाने की संभावना है।

(vii) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने हाल ही में यह निदेश दिया है कि यदि प्रत्येक पक्ष की बहस में पांच घंटे से अधिक समय लगता है तो प्रत्येक मामले में काउंसेल को, लिखित बहस फाइल करनी होगी। मौखिक बहस के लिए प्रत्येक पक्ष के काउंसेल को अब पांच घंटे से अधिक का समय नहीं दिया जाएगा जब तक कि न्यायालय यह महसूस न करे कि काउंसेल को अधिक समय दिया जाना चाहिए। उस दशा में प्रत्येक पक्ष के काउंसेल को मौखिक बहस के लिए अधिक से अधिक दस घंटे दिए जाते हैं। इस प्रकार दोनों पक्षों के काउंसेलों की मौखिक बहस के समय को कम कर दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप मामले अब शीघ्र निपट जाते हैं।

(viii) अभी हाल में, एक न्यायालय प्रशासक-सह- रजिस्ट्रार की नियुक्ति की गई है। इस पद पर किसी ज्येष्ठ न्यायिक अधिकारी की नियुक्ति की जाती है, जिससे कि वह विद्यमान दो रजिस्ट्रारों के सहयोग से रजिस्ट्री की कार्य पद्धति का पुनर्गठन कर सके और उसकी तकनीक और दक्षता में सुधार ला सके।"[16]

3.13 स्थिति से निपटने के लिए इन अंकित कदमों के विरुद्ध, उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में यह अभिनिर्धारित करके अपनी अधिकारिता में विस्तार किया है कि एक ही पक्षकारों के बीच अपने ही निर्णय के

विरुद्ध अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन उसके समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है। इस निर्णय पर टिप्पणी करते हुए एक राष्ट्रीय दैनिक समाचारपत्र ने कहा है कि "अंतुले के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से उसके अपने ही निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की बाढ़ आ सकती है जबकि इसके पूर्व उनके निर्णय अंतिम हुआ करते थे।"[17] उच्चतम न्यायालय के हाल ही के इस निर्णय को नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने सर्वसम्मति से सुनाया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "अर्जीदारों के इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि उच्च न्यायालयों द्वारा उनके समक्ष लंबित कार्यवाहियों में या उनके संबंध में पारित न्यायिक आदेश उक्त अधिकारिता के प्रयोग द्वारा अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन द्वारा सुधारे जाने के ~~अधीन~~ समर्थ हैं।" यदि उच्च न्यायालय द्वारा पारित किसी न्यायिक आदेश को उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल रिट पिटीशन द्वारा नहीं सुधारा जा सकता है तो उक्त निर्णय इस धारणा की पूरी तरह पुष्टि करता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित न्यायिक आदेश अनुच्छेद 32 के अधीन उसके ही समक्ष की गई रिट पिटीशन की और अधिक विनिर्दिष्ट रूप से एक ही पक्षकारों के बीच की विषयवस्तु नहीं बन सकता है। निर्णय पर कोई टिप्पणी करने से बचते हुए, इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक विनिश्चय अब संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किसी पिटीशन के ही अधीन होगा और इसलिए निश्चित रूप से यह भविष्यवाणी करना असंभव होगा कि आने वाले मुकदमों की झड़ी लग जाएगी। इस बात की ओर भी संकेत करने की आवश्यकता है कि एक तरफ उच्चतम न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन ग्रहण करने से, सक्षम होते हुए भी, मना करता है,[19] वहां दूसरी तरफ अब तक अज्ञात अधिकारिता द्वारा अपने द्वार इतना अधिक खोल देता है कि

जिससे प्रोत्साहन पाकर लोग उसके ही विनिश्चय को उसके समक्ष प्रस्तुत कर सकें ।

3.14 कारणों पर चर्चा करते समय, प्रस्तुत किए गए उपचारों की ओर भी ध्यान दिलाया गया है । इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अब तक सिफारिश की गई किसी भी बात से स्थिति में जरा भी सुधार नहीं आया है । अत: यह अपरिहार्य है कि स्थिति के नियंत्रण से बाहर हो जाने के पूर्व ही, स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रबल उपाय विहित किए जाने होंगे ।

अध्याय 4

सिफारिशें

4.1. बकाया मामलों के असहनीय बोझ के जिसके अधीन उच्चतम न्यायालय कार्यरत है, हल की खोज में, विधि आयोग ने न्यायिक सुधारों की समस्या का अध्ययन करते हुए, तारीख 19 जनवरी, 1988 के एक पत्र द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से चर्चा की। (देखिए परिशिष्ट 1) जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वह समस्या के वैज्ञानिक विश्लेषण में विधि आयोग की सहायता करें जिससे कि प्रभावी उपचारी उपाय निकाले जा सकें। पूर्वतर रिपोर्टों[1] की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने के पश्चात् उन्हें वर्तमान विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई उस रिपोर्ट के बारे में सूचित किया गया जो विशेष रूप से न्याय प्रशासन के विकेंद्रीकरण के संबंध में है और जिसमें सामान्य न्यायालयों की अधिकारिता को समाप्त करके विशेष अधिकरणों का सुझाव दिया गया है। उस समय विधि आयोग ने, विषय सूची के रूप में, स्थिति से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए क्या किया जाना चाहिए जिस पर अपनी उस अंतिम विचार धारा को और ध्यान दिलाया जिसे बहुत अधिक प्रयत्न किए बिना शीघ्रता से किया जा सकता है।

4.2. उन सभी को जिन्होंने उच्चतम न्यायालय की कार्य पद्धति और बकाया मामलों की समस्या पर अपना ध्यान केंद्रित किया था, विश्वास हो गया था कि बकाया मामलों के एकत्र होने के लिए अधिकांशतः उत्तरदायी प्रमुख कारणों में से एक कारण उच्चतम न्यायालय में रिक्तियों के भरने में असाधारण विलंब है। कुछ ही दिन पहले विधि और न्याय मंत्रालय में राज्य मंत्री ने राज्य सभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए यह कहा था कि उच्चतम न्यायालय में 9 रिक्तियां भरी जानी शेष हैं। उन्होंने आगे यह भी कहा कि न्यायाधीशों के पदों में सांविधानिक प्राधिकारियों

से परामर्श करना होता है। उन्होंने कहा कि यह बताना संभव नहीं है कि रिक्तियों को भरने में कितना समय लगेगा।[2] यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति सहित 26 है तो दी गई जानकारी से यह प्रकट होता है कि एक तिहाई रिक्तियां दो वर्ष से अधिक समय से बिना भरी रह गई हैं। रिक्तियों के भरने में इस घोर विलंब के चाहे जो भी कारण हों, फिर भी यह असंभव है कि रिक्तियों को भरने में इतना लंबा समय खर्च करने की आवश्यकता होगी। तदनुसार, विधि आयोग का विश्वास था कि अत्यंत ईमानदारी के होते हुए भी, जिसे कभी प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है, इस विक्षोभकारी स्थिति का मूल कारण रिक्तियों के भरने की प्रक्रिया में ही ढूंढना होगा। विधि आयोग ने, तदनुसार, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि उसने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में नियुक्ति के लिए एक नए फोरम की सिफारिश की है।[3] यह रिपोर्ट सरकार के पास है। उसे संसद के दोनों सदनों के पटल पर रखा जा चुका है। विधि आयोग ने तब आगे इस बात का उल्लेख किया कि न्यायिक नियुक्तियों पर कार्यवाही करने के लिए किसी भिन्न फोरम के प्रतिस्थापन की सिफारिश को प्रवृत्त किए जाने से पूर्व, कुछ समय लग सकता है। इस बीच, वस्तुतः मामला की गंभीरता के प्रति आंख मूंद लेना खतरे से खाली नहीं होगा।

4.3. व्यावहारिक तौर पर यह स्थापित कर दिया गया है कि रिक्तियों को भरने में असामान्य विलंब होता है । अतः इससे पूर्व कि न्यायिक नियुक्तियों के लिए नए न्यायालय की स्थापना के रूप में कोई दीर्घकालीन विनिश्चय किया जाए, इसे तुरन्त निपटाने के लिए एक अत्यावश्यक कदम आवश्यक है । पत्र में इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है कि वर्तमान न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति या मृत्यु हो जाने पर रिक्ति होती है । मृत्यु ऐसी अनिश्चित घटना है जिसकी कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता है और न ही पहले से ही इस बात का उचितमूलक रूप से कोई कार्रवाई कर सकता है । किन्तु सेवानिवृत्ति के बारे में तो पहले से पता रहता है । पहले भी, यह विचार संप्रेषण किया गया था कि रिक्ति को भरने की प्रक्रिया किसी न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति की वास्तविक तारीख से जिसको रिक्ति होगी, पूर्व पर्याप्त समय से पहले से आरंभ कर दी जानी चाहिए । इस सुझाव को कोई महत्व नहीं दिया गया है और इसलिए स्थिति जैसी थी वैसी ही बनी हुई है । अतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष एक प्रस्ताव रखा गया कि इसके पश्चात् जब कभी कोई न्यायाधीश अपने सेवानिवृत्ति की तारीख तक पहुँचे, तो उसे पदत्याग नहीं करना चाहिए बल्कि उस दिन से जब तक उसका उत्तरवर्ती पद ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हो जाता, संविधान के अनुच्छेद 128 में अंतर्विष्ट उपबंधों का आश्रय अवश्य लिया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, इस प्रकार सेवानिवृत्त हो रहे न्यायाधीश को ऐसे रूप में जिसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अनुच्छेद 128 के अधीन अनुरोध किया गया है, ऐसे समय तक कार्य करते रहना चाहिए जब तक उसका उत्तरवर्ती पदग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हो जाता है । इससे न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में एक दिन के लिए भी हानि नहीं होगी । इस सुझाव की जिस संभावित आलोचना की ओर भी ध्यान दिलाया गया है उसके लिए विवेकसंगत उत्तर भी विनिर्दिष्ट किया गया है ।

4.4. विधि आयोग का दूसरा अंतिम प्रस्ताव उच्चतम न्यायालय के उन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों का जो अपनी सेवानिवृत्ति के समय से राजधानी में ही बस गए थे, प्रभावी उपयोग करने के बारे में था। इन प्रतिभाशाली न्यायाधीशों के संविधानमूलक प्रभावी उपयोग से होने वाले लाभ भी विनिर्दिष्ट किए गए। पत्र में यह अनुरोध भी किया गया था कि इन अंतरिम प्रस्तावों को ऐसे समय तक कार्यान्वित किया जा सकता है जब तक कि न्यायिक नियुक्तियों के लिए नए ~~न्यायालयों~~ फोरम की स्थापना के रूप में 'स्थायी हल को प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता है। देश के न्याय प्रशासन के प्रधान के रूप में और पद्धति में अव्यवस्था के प्रति चिंतातुर, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से यह अनुरोध किया गया था कि वह न केवल इस अंतिम प्रस्ताव को महत्व दें बल्कि कुछ और प्रस्तावों को भी महत्व दें जिन्हें वह अपने सहकर्मियों से परामर्श करने के पश्चात स्वयं देना चाहें। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने इस पत्र का उत्तर देना उचित नहीं समझा। निस्संदेह इससे नुकसान विधि आयोग का ही हुआ। किन्तु समय-बद्ध कार्यक्रम वाला विकास अनिश्चित समय तक इंतजार नहीं कर सकता है। इसका यह अर्थ लगाना भी उचित होगा कि संभवतः इन प्रस्तावों के प्रति कोई गंभीर आक्षेप न हो।

4.5. विधि आयोग की राय है कि रिक्तियों को भरने की इस समस्या का दीर्घकालीन स्थायी हल उसकी इस रिपोर्ट के प्रभावी कार्यान्वयन में विद्यमान है जिसमें न्यायिक नियुक्तियों के लिए एक नए ~~अंग~~ फोरम की सिफारिश की गई है। ~~अंतराल के दौरान~~ तब तक के लिए, यह अब अत्यंत आवश्यक है कि उन दो प्रस्तावों को कार्यान्वित किया जाए जिनकी इसमें सिफारिश की गई है।

4.6. रिक्ति को भरने में विलंब में अंतर्निहित प्रवृत्ति न्यायाधीश की संख्या को ऐसे समय तक नुकसान पहुंचाने की होती है जब तक रिक्ति भर नहीं जाती और रिक्ति के समय पर न भरे जाने के कारण मानवदिवसों का जो नुकसान होता है उसका निश्चित परिणाम यह है कि बकाया मामलों का ढेर बढ़ जाता है । न्यायालय की अनवरत अक्षुण्ण न्यायाधीशों की संख्या को न्यायालय की समुचित कार्य विधि से विलग नहीं किया जा सकता । इस रिपोर्ट का संबंध रिक्तियों के भरे जाने में विलंब के लिए उत्तरदायी कारणों का पता लगाने से नहीं है । इस बारे में तो कार्यवाही पूर्वतर रिपोर्ट में सारगर्भित रूप में और पूरी तरह से की गई है । किन्तु ऐसे समय तक जब तक रिक्तियों को शीघ्रता से भरने के लिए प्रभावी कदम उठाए जाएं, यह सिफारिश की जाती है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीश ऐसे समय तक अपने पद पर बने रहेंगे जब तक कि उनका उत्तरवर्ती पदग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हो जाता है । इस सुझाव के दो स्पष्ट लाभ होंगे : (i) न्यायाधीशों की संख्या अक्षुण्ण बनी रहेगी, और (ii) वादों को शीघ्रता से निपटाने के लिए अत्यंत अनुभवी न्यायाधीश अपनी विशेषज्ञता सहित, उपलब्ध होंगे क्योंकि नया नियुक्त किया गया न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के कार्यकरण के प्रति अपने को अनुकूल बनाने में समय लेता है । निस्संदेह, ये दोनों लाभ सुझाव की आलोचना करने वालों का मुंह बंद कर देंगे । चर्चा के दौरान एक आलोचना उभर कर आई थी कि यदि निम्नस्तरीय न्यायाधीश सेवानिवृत्त ऐसा है जिसके बारे में मुख्य न्यायमूर्ति की राय अच्छी है, तो वह उसके उत्तरवर्ती की सिफारिश करने में पीछे हट जाएगा ; किन्तु यदि सेवानिवृत्त न्यायाधीश ऐसा है जो उतना प्रभावशाली नहीं है तो उसके उत्तरवर्ती को यथासंभवशीघ्र लाकर उसे शीघ्रता से अपदस्थ किया जा सकता है । इस आलोचना में वैधता का इस कारण से

अभाव है कि यदि इसमें किसी कारण से शीघ्रता से नियुक्तियां कर ली जाती हैं तो इससे संस्था को निश्चित रूप से लाभ होगा। किन्तु इस आलोचना का उससे अच्छा उत्तर तो यह है कि रिक्तियां तो कालानुक्रम में भरी जाती हैं जिससे कि अच्छा न्यायाधीश बना रहे और जो उससे कम अच्छा हो वह उसके पीछे रहे। इसके बावजूद भी अगले व्यक्ति के उत्तरवर्ती की नियुक्ति की जाती है, वह प्रथम वर्णित व्यक्ति का स्थान ग्रहण करेगा। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति सभी ऐसे पक्षपातों से मुक्त होता है और वह न्याय तंत्र की भलाई के लिए ही निरपेक्ष रूप से कार्य करता है। इन कारणों से, आशंका पूर्णतः निर्मूल है। यह लाभ किसी संभावित हानि की आशंका को दूर करता है और इसलिए यह प्रस्ताव तुरन्त कार्यान्वित किए जाने योग्य है।

4.7. बकाया मामलों के प्रश्न पर कार्यवाही करते समय यह बताना आवश्यक है कि न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या जो बढ़ रहे बकाया मामलों में कमी लाने के लिए कभी भी पर्याप्त नहीं पाया गया है। जैसा कि इसमें इसके पूर्व भी बताया जा चुका है[4] कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या का चार विभिन्न अवसरों पर पुनरीक्षण किया जा चुका है और किसी भी समय पुनरीक्षित सदस्य ~~संस्थान~~ संख्या ने बकाया मामलों को प्रभावित नहीं किया है। अतः यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि बताए गए किसी भी समय पर न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या उस समय आने वाले कार्य को प्रभावी ढंग से निपटाने में तो ~~एक=~~ अत्यंत समर्थ ~~होगी~~ हो सकती है, किन्तु बकाया मामलों में कोई कमी लाने में पूर्णतः निष्प्रभावी होगी। अतः तत्कालीन कार्य को निपटाने के लिए न्यायाधीशों की वर्तमान सदस्य-संख्या ~~को छोड़ दिये~~ के सिवाय ~~जाने पर~~, बकाया मामलों से निपटने के लिए एक भिन्न नई युक्ति आवश्यक है।

4.8. यह जगजाहिर और निर्विवाद है कि कुछ न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् दिल्ली में ही बस गए हैं । यद्यपि वे देश के विभिन्न भागों से आए होंगे किन्तु, जब वे उच्चतम न्यायालय में उन्नत किए गए होंगे तब उनके दिल्ली में बस जाने के अपने ही कारण होंगे । जब वे सेवानिवृत्ति के पश्चात् दिल्ली में ही बस जाते हैं तो वे अपने निवास स्थान, टेलीफोन और अन्य सुविधाओं की जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है, व्यवस्था करते हैं । वे सेवानिवृत्त न्यायाधीश ऐसी मूल्यवान कृतियां हैं जिनका पूरी तरह उपयोग किया जाना आवश्यक है । उच्चतम न्यायालय में आने के पूर्व, उन्होंने कम से कम दस वर्ष से अधिक अवधि के लिए उच्च न्यायालय में कार्य किया होगा और उन्होंने वहीं न्यायालय में रह कर अपनी विशेषज्ञता में औसतन लगभग 5 वर्ष जोड़े होंगे । अपने सक्रिय व्यवसाय के दौरान उन्होंने उनके समक्ष आने वाले मामलों और संविधानों का विनिश्चय किया है । उन्होंने निर्णय करने वाली प्रक्रिया को तेज किया है जो कि एक धरोहर है । न्यायनिर्णयन की कला तो उनके खून में बसी है । न्यायालय प्रक्रिया और न्यायालय कार्यवाही उनके बाएं हाथ का खेल हो गया है । उन्होंने उनके समक्ष आने वाले सिविल , दांडिक, कर, श्रम और सांविधानिक मामलों के विषयों में विशिष्ट विशेषज्ञता अर्जित कर ली है । इस तरह दुबारा कहा जाए तो वे मूल्यवान कृतियां का प्रतिनिधित्व करते है । अधिवर्षिता पर सेवानिवृत्त होने पर, अनुच्छेद 124(7) में अंतर्विष्ट उपबंध की दृष्टि से, उन्हें भारत के राज्यक्षेत्र में किसी न्यायालय या किसी प्राधिकरण के समक्ष विधि व्यवसाय करने से प्रतिषिद्ध किया गया है । वे अपने घर पर ही विधि व्यवसाय कर सकते हैं किन्तु यह सभी सेवा-निवृत्त न्यायाधीशों को शायद ही आकर्षक लगे क्योंकि अधिवर्षिता और रहन सहन के कारण उनमें से अनेक वैयक्तिक व्यवसाय करने में रुचि न ले सकेंगे ।

इस उपयोग में न लाई गई प्रतिभा का कैसे उपयोग किया जाए ?

4.9. जब कभी न्यायाधीशों की सदस्य संख्या में वृद्धि का सुझाव दिया जाता है, एक प्रश्न प्रस्ताव के वित्तीय भार के बारे में सदैव उठाया जाता है । जब कभी न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि की जाती है और अधिक न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं उन्हें निवास स्थान, परिलब्धियां और सुविधाएं उपलब्ध कराने और भवन के विस्तार तथा कर्मचारिवृन्द में अभिवृद्धि को अत्यंत खर्चीला बताया जाता है और प्रस्ताव को ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता है । विधि आयोग जो सिफारिश कर रहा है वह अतिरिक्त व्यय के इन्हीं संभावित क्षेत्रों को ध्यान में रखकर की गई है।

4.10. पहले ही यह धारणा स्वीकार कर ली जानी चाहिए कि न्याय प्रशासन पर व्यय, योजनेतर व्यय है । विधि के शासन पर आधारित सांविधानिक प्रजातंत्र आर्थिक रूप से भी तब तक विकास नहीं कर सकता जबतक कि उसके विधिक सूत्रण उसकी आर्थिक नीति से मेल नहीं खाते । आर्थिक नीति, जैसा कि उद्देशिका में दर्शित है, समाजवादी प्रकृति की होनी चाहिए । आर्थिक योजना और विधि सूत्रण के बीच यह द्विभाजन कार्यपालिका के आर्थिक और कराधान संबंधी उपचारों की बाबत भिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए उत्तरदायी रहा है जिसके कारण अनेक अवसरों पर संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता पड़ी है । इस पक्ष पहलू का और अधिक उल्लेख किए बिना, विश्वास पूर्वक यह कहा जा सकता है कि न्यायप्रशासन पर व्यय को अब योजना व्यय माना जाना चाहिए ।

4.11. इस प्रारंभिक सर्वेक्षण से विद्यमान स्थिति को सम्यक् महत्व दिया जाना चाहिए। न्यायालयों को उपलब्ध भवनों को, विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय के भवन को, शायद ही पूरी तरह उपयोग में लाया जाता है। न्यायालय प्रातः 10.30 बजे आरंभ होता है और शाम 4 बजे उठ जाता है। अतः यदि कुछ न्यायालय प्रातः 8.30 बजे से कार्य करना आरंभ कर दें तो भवन पर कोई अतिरिक्त व्यय किए बिना, अतिरिक्त न्यायालय इसी भवन में कारगर ढंग से कार्य कर सकते हैं। न्यायालय के केन्द्रीय अनुसचिवीय स्थापन में पुस्तकालय, भवन सुविधा, कर्मचारिवृन्द आदि में वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं होगी। इसमें अतिरिक्त न्यायालयों को कुछ अतिरिक्त कर्मचारी उपलब्ध कराने के लिए व्यय में थोड़ी सी वृद्धि होगी।

4.12. इन आरंभिक टिप्पणियों पर, यह सिफारिश की जाती है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से जो कम से कम बारह हों, चार न्यायपीठों में, प्रत्येक में तीन-तीन, में बैठने और पुरानी सिविल और दांडिक अपीलों पर कार्यवाही करने का अनुरोध किया जाए। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति एक (आधार/ऐसा) तय करें जिससे परे के मामलों को न्यायपीठों में आसीन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों द्वारा निपटाए जाने के लिए उपलब्ध माना जाए। इस सुझाव को कार्यान्वित करने के लिए सांविधानिक संशोधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 128 इस सुझाव के कार्यान्वयन में प्रभावी रूप से सहायक होगा। अनेक न्यायाधीशों का यह अनुभव है कि पुराने मामले कभी कभी समय के अभाव में लटके पड़े रहते हैं और उन पर जरा भी विचार नहीं किया जाता है। ये चार न्यायपीठें - दो दांडिक अपीलों और दो सिविल अपीलों को निपटाने के लिए, पुराने मामलों पर कार्यवाही करेंगी और इनका निपटारा निश्चित रूप से तेजी से होगा क्योंकि

कई मामले, उनके अभियोजन में रुचि के अभाव के कारण, निपटा दिए जाएंगे क्योंकि वे प्रथम बार के न्यायालय में संस्थित किए जाने की तारीख से लगभग बीस वर्ष से अधिक समय से लंबित पड़े हैं । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, राष्ट्रपति के परामर्श से, दिल्ली में रह रहे ऐसे सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से इस कार्य को स्वीकार करने का अनुरोध कर सकते हैं जिसकी अवधि आरंभ में 2 वर्ष होगी ।

4.13. इस प्रस्ताव को आकर्षक बनाने के लिए, सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को वही वेतन दिया जाना चाहिए जो आसीन न्यायाधीशों को दिया जाता है और पेंशन नहीं काटी जानी चाहिए । उन्होंने अपनी पेंशन अर्जित की है । पुनर्नियोजन पर पेंशन काटने की संपूर्ण धारणा अब हतोत्साहक हो गई है । वास्तव में, गुजरात राज्य में किसी स्तर के किसी न्यायाधीश को जब पुनर्नियोजित किया जाता है तब वह आसीन न्यायाधीश को अनुदेय वेतन और अपनी पेंशन प्राप्त करता है । यह हितकारी सुझाव अनुकरणीय है और इसी लिए तदनुसार सिफारिश की जाती है ।

4.14. इस सिफारिश को संविधान के अनुच्छेद 128 का संशोधन किए बिना, कार्यान्वित किया जा सकता है । अनुच्छेद 128 में यह उपबंध है कि जब सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से उच्चतम के न्यायाधीश के रूप में उपस्थित होने और कार्य करने का अनुरोध किया जाए, वे ऐसे भत्तों के हकदार होंगे जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा अवधारित करे । राष्ट्रपति उन्हीं भत्तों को अवधारित कर सकते हैं जो उच्चतम न्यायालय के किसी आसीन न्यायाधीश को अनुदेय है । अभी तक जो परिपाटी अपनाई जाती रही है उसे पूर्णतः अहितकर कहा जा सकता है क्योंकि किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश ने जिसने तदर्थ आधार पर न्यायाधीश के रूप में कार्य किया था, विधि आयोग को सूचित किया कि भत्ते लगभग दिहाड़ी मजदूरों की दरों के बराबर है जो उच्चतम न्यायालय के किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश के लिए अशोभनीय स्थिति है ।

4.15. ये न्यायपीठें प्रातः 8.30 बजे से दोपहर 12 बजे तक अधिविष्ट होंगी । उच्चतम न्यायालय 12 बजे से 5 बजे तक अधिविष्ट होगा और उसमें आधे घंटे का भोजनावकाश होगा क्योंकि एक घंटे का भोजन अवकाश शायद ही आवश्यक हो । सेवानिवृत्त न्यायाधीशों द्वारा पीठासीन न्यायालयों का प्रशासनिक पर्यवेक्षण, स्पष्टतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति में निहित होगा ।

4.16. इसमें की गई सिफारिशें, पूर्वतर रिपोर्टों में की गई सिफारिशों को अतिक्रांत करते हुए नहीं हैं । जहां दोनों सिफारिशें सह अस्तित्व में हो वहां सभी सिफारिशों को कार्यान्वित किया जाना चाहिए । किन्तु जहां वे एक दूसरे का उल्लंघन करती हों वहां इसमें की गई सिफारिशों को कार्यान्वित किया जाना चाहिए क्योंकि इसके पूर्व की गई सिफारिशें हो सकता है सरकार को मान्य न हों ।

4.17. विधि आयोग इस बात को दोहराना चाहता है कि न्यायालय के द्विभाजन के बारे में सिफारिश कार्यान्वित किए जाने योग्य है । वर्तमान विधि आयोग का इस सिफारिश को दोहराने का एक अतिरिक्त कारण है । उच्चतम न्यायालय दिल्ली में ही अधिविष्ट होता है । भारत सरकार ने दो अवसरों पर भारत के उच्चतम न्यायालय से दक्षिण में एक न्यायपीठ स्थापित करने के लिए उनकी राय मांगी थी । इस प्रस्ताव पर उच्चतम न्यायालय का कोई समर्थन प्राप्त नहीं हुआ । परिणाम यह है कि दक्षिण में तमिलनाडु, पश्चिम में गुजरात और पूर्व में असम और अन्य राज्यों के दूरस्थ स्थानों से आने वाले व्यक्तियों को उच्चतम न्यायालय तक पहुंचने के लिए यात्रा पर बड़ी रकम खर्च करनी पड़ती है । उच्चतम न्यायालय में

अपने साथ एक ऐसे वकील को भी लाने की परिपाटी है जिसने उच्च न्यायालय में उस मामले पर कार्यवाही की हो। इससे खर्च और बढ़ जाता है और इसलिए कोई स्थगन तो अत्यंत खर्चीला हो जाता है। स्थगन, न्यायालय की एक पुनरावृत्ति घटना हो गई है। इससे खर्च कई गुना बढ़ जाता है। अब यदि उच्चतम न्यायालय को सांविधानिक न्यायालय और अपील न्यायालय अथवा परिसंघीय अपील न्यायालय में द्विविभाजित किया जाता है तो परिसंघीय अपील न्यायालय के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्य भारत के स्थानों पर न्यायपीठों में ~~बैठने~~ अधिविष्ट पर कोई गंभीर विरोध उत्पन्न नहीं होगा। उससे न केवल पर्याप्त रूप में खर्च में कमी आएगी बल्कि वादार्थी को अपने मामले की बहस उसी अधिवक्ता द्वारा की जाने का लाभ मिलेगा जिसने उच्च न्यायालय में उसकी सहायता की थी और जिसे लंबी दूरी तक यात्रा नहीं करनी पड़ेगी। जब कभी सांविधानिकता का प्रश्न आता है, जैसा कि उस रिपोर्ट में कहा गया है उच्चतम न्यायालय दिल्ली में पूर्ण रूप से ~~बैठ सकता है और~~ अधिविष्ट होकर मामले निपटा सकता है। यह उस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के समर्थन को पुनः दुहराने के लिए खर्च में लाभ के अनुपात का यह अतिरिक्त किन्तु महत्वपूर्ण कारण है।

4.18. विधि आयोग का उच्चतम न्यायालय में महीनों लंबी चलने वाली बहसों के शीघ्र हल की खोज में बहुत समय तक खत्म न होने वाले अधिवक्ता का सामना करना पड़ा जिस पर भी उसने मौखिक बहस के पूर्व उत्पादन की सिफारिश नहीं की।[6] इसलिए यह कहा गया है कि किसी भी मामले में प्रत्येक पक्ष को चार घंटे से अधिक समय देकर बहस को कम करने की व्यवस्था की गई है तथापि इसे प्रभावी रूप में कार्यान्वित नहीं किया गया है। हाल ही का एक उदाहरण लें तो एक अपील, विशेष न्यायालय और उच्च न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों के बावजूद भी, उच्चतम न्यायालय में तीन न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ द्वारा तीन सप्ताह से अधिक समय से सुनी जा रही थी।[7] अतः, अब यह अनिवार्य हो गया है कि मौखिक बहस के प्रति इस उदार दृष्टिकोण से समय की मांग की जाना आवश्यक है। ऐसे अनेक मामले हैं जिन्हें हम भारत के मुख्य न्यायमूर्ति बता सकते हैं, जिनमें मौखिक बहस को पूर्णतः अलग किया जा सकता है। विशेष इजाजत पिटीशनों को जिन्हें सूचीबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उन्हें परिवादित करके स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। जिन पिटीशनों में बहस आवश्यक हो वहां सुनवाई आधे घंटे से अधिक अवधि तक सीमित की जा सकती है। अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध मामलों में, न्यायालय को पहले से समय निश्चित करना चाहिए और उसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। न्यायालयों को मौखिक बहस समाप्त करके लिखित ब्रीफ का आग्रह करने के लिए सशक्त किया जाना चाहिए।

1 मौखिक बहस के बिना ग्रहण किया जा सकता है न्यायालय में

4.19. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बहुत भारी असहनीय कार्यभार की सही शिकायत करते हैं । जितनी तेजी से सुनवाई की जाती है उतने ही बड़ी संख्या में निर्णय एक न्यायाधीश के हिस्से में आते हैं । लिखित राय में बहुत अधिक ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता होती है और उस पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए न्यायाधीशों के पास बहुत ही कम समय उपलब्ध होता है । स्थिति की आंतरिक प्रकृति निर्णय सुनाने में विलंब की होती है । अब समय आ गया है जब कि न्यायाधीशों को लिखित राय के बिना मामलों को निपटाने के लिए सशक्त किया जाए । न्यायपीठ कारणों को बताए बिना यह निर्णय सुनाने को स्वतंत्र होगी कि अपील स्वीकार की जाती है या खारिज की जाती है या उच्च न्यायालय के आदेश को परिवर्तित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय के निर्णय अंतिम होते हैं अतः उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी अन्य अधिकरण के लाभ के लिए कारण बताए । विधि की निरंतरता और सुनिश्चितता को सुनिश्चित करने के लिए लिखित रायें ऐसे मामलों में अवश्य दी जानी चाहिए जिनमें सांविधानिक बारीकी का या विधि का ऐसा मूल प्रश्न अंतर्वलित हो जो उच्च न्यायालयों और उच्च न्यायालयों के अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष अक्सर उत्पन्न होते हैं । सभी अन्य मामलों में, लिखित रायें अलग कर दी जानी चाहिए और अपीलें कोई कारण बताए बिना निपटाई जानी चाहिए । इस सुझाव में कोई नई या मूलभूत बात नहीं है । वे व्यक्ति जो संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय के कार्यकरण के प्रशंसक हैं उन्हें उसके कार्यकरण को भी स्वीकार करना चाहिए । जबकि संयुक्त राज्य का उच्चतम न्यायालय केवल कुछ ही मामलों में ~~अपनी कोई~~ कारण सहित राय देता है, वहां बड़ी संख्या में मामले कोई कारण बताए बिना निपटाए जाते हैं । उदाहरण के लिए, न्यायालय की 1983 की

की अवधि में उसके डाकेटों में 5,155 मामले थे और उसने अंतिम रूप से 4,162 मामले निपटाए थे। किन्तु न्यायालय द्वारा निपटाए गए अधिकांश मामलों में केवल 285 मामले गुणागुण के आधार पर निपटाए गए, और केवल 163 मामलों में [यह औसत संख्या है] में लिखित रायें प्रदान की गईं, शेष मामले न्यायालय द्वारा या शासन आदेशों द्वारा [उदा० अभिमुक्ति की, दिया गया या खारिज किया गया [अर्थात खारिज किया]] निपटाए गए।[8] यह परंपरा स्वीकार की जाने और न्यायालय के न्यायाधीशों पर असहनीय बोझ से छुटकारा दिलाने के लिए कार्यान्वित की जाने योग्य है।

4.20. देश तेजी से 21वीं सदी की ओर बढ़ रहा है। किन्तु उसकी विधिक प्रक्रिया को उतना अधिक पुरातन बनाया जा रहा है जितना वह पुरातनपंथी हो सकता है। न्यायिक पद्धति ने आधुनिक तकनीकी सुधारों की उपेक्षा की है। उच्चतम न्यायालय में अभी तक अधिक परिष्कृत साफ्टवेयर सुविधा के अलावा टेलेक्स जैसी मामूली आवश्यकता भी उपलब्ध नहीं थी। उसकी रजिस्ट्री को कम्प्यूटर से सज्जित करने की बात तो थी किन्तु वह अभी तक कार्यान्वित नहीं की गई है। पुस्तकालय में कम्प्यूटर व्यवस्था को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

...यालय का समय
...ही विषय वाले
...यों को एकत्र करने
...ष्ट हो जाता है
...:

[ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें बटन दबाते ही किसी भी विषय पर सभी निर्णय उपलब्ध हो जाएं। न्यायालय के निर्णयों के अंतर्गत आने वाले मामलों को कम्प्यूटर द्वारा एकत्र करके पुस्तकों में रखे जाने की आवश्यकता है। न्यायाधीशों को डिक्टाफोन उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे कि आशुलिपिक के उपलब्ध होने की प्रतीक्षा में उन्हें अपना समय नष्ट न करना पड़े। ये और इसके साथ अन्य प्रौद्योगिकी विकास उच्चतम न्यायालय में तुरंत पुर:स्थापित किए जाने योग्य हैं।

4.21. ये ही सभी सिफारिशें हैं।

अध्याय 5

पूर्वाभास

5.1 विधि आयोग ने उनके आरंभ से इस दृष्टिकोणों से सामान्यतः सहमत होते हुए कि विद्यमान पद्धति में आमूल परिवर्तन की सिफारिश नहीं की गई है, विद्यमान विधि आयोग की राय में, स्थिति अब इस सीमा तक बिगड़ गई है कि सभी संबंधित हितों को यह ~~बेतावनी~~ चेतावनी देने का समय आ गया है कि अगला कदम कुछ ऐसा होगा जो उन हितों की धारणा से परे होगा । इस बात को दोहराए बिना कि उच्चतम न्यायालय अपने बकाया मामलों के भारी बोझ में दब कर गंभीर स्थिति में पहुंच गया है, फिर भी उसके व्यक्तित्व और प्रतिभा को तिरोहित नहीं किया गया है। किन्तु संविधान निर्माताओं ने संविधान की रचना करते समय जो कुछ सोचा था उसकी ऐसे समय में उपेक्षा नहीं की जा सकती जब संविधान में परिकल्पित कदम उठाने का समय आ गया हो ।

5.2. संविधान के अनुच्छेद 124 में देश की न्यायिक व्यवस्था के शीर्ष पर उच्चतम न्यायालय की स्थापना करने का उपबंध है । यह न्यायालय न्याय प्राप्त करने का अंतिम आश्रय-स्थल है, भले ही यह अनुच्छेद 32 के अधीन रहते हुए प्राप्त होता है । उसे सर्वाधिक विस्तृत अधिकारिता प्रदत्त की गई है जिससे कि वह किसी प्रक्रियात्मक जटिलताओं से अबाधित हुए बिना, न्याय के विफल होने को टाल सके या किसी दोष को सुधार सके । अतः भारत के उच्चतम न्यायालय का अपना ही एक विशेष व्यक्तित्व है । उसकी अपनी प्रतिष्ठा है । उसकी अपनी क्षमता है । वह अन्याय करने वाले किसी भी अन्यायी के पास पहुंच सकता है । फिर भी उससे यह आशा की जाती है कि वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग सीमित रूप में और विवेक से करेगा, जिससे कि वह अपनी समस्याओं के जाल में न फंस सके । उनमें से एक बकाया मामलों की समस्या भी है जिसने , जैसा कि बताया जा चुका है , न्यायालय को उसके दरवाजे पर दस्तक दे रहे वादार्थियों के लिए अपने द्वार बंद करने के लिए विवश कर दिया है ।

5.3. विधि आयोग इस तथ्य के प्रति पूरी तरह सचेत है कि उच्चतम न्यायालय को भले ही कितनी ही कठिनाइयों, कष्टों और संकटों का सामना करना पड़े किन्तु देश के आम नागरिकों के हृदय में उसके लिए अभी भी स्थान है। वे उसे श्रद्धा से देखते हैं। किन्तु निस्संदेह, उसकी साख तेजी से इस आधार पर नीचे गिरती जा रही है कि वह युक्तियुक्त समय में न्याय प्रदान करने में असमर्थ है। किन्तु इस स्थिति को आशा है, सुधारा जा सकता है और पर्याप्त रूप से उस दशा में सुधारा जा सकता है यदि इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को सत्यनिष्ठा पूर्वक कार्यान्वित किया जाता है। यदि दुर्भाग्यवश, जैसा कि पिछले अनुभव बताते हैं, सिफारिशों के प्रति और उदासीनता बरती गई तो विधि आयोग अन्य प्रकृति के आमूल परिवर्तनों का सुझाव देने के अपने कर्तव्य में असफल नहीं होगा।

5.4. अनुच्छेद 32 मूल अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायत पर उच्चतम न्यायालय में समावेश करने का मूल अधिकार प्रदान करता है। उच्चतम न्यायालय को संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए ऐसे निदेश, या आदेश या रिट, जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं, जो भी समुचित है, जारी करने की अधिकारिता है। यह अवधारणा की गई है कि न्यायपालिका के शीर्ष न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय अपने समग्र स्वरूप और व्यक्तित्व को प्रतिपादित करते हुए, समय की चुनौती का सामना करने में समर्थ होगा। किन्तु आदि निर्माता दूरदर्शी थे और उन्होंने यह पहले ही देख लिया था कि यदि उच्चतम न्यायालय असफल होता है या विचलित होता है तो किसी को भी निराशा में हाथ खड़े करने की आवश्यकता नहीं है। अतः अनुच्छेद 32 का खंड 3 अधिनियमित किया गया था जो निम्नलिखित रूप में है:-

"उच्चतम न्यायालय को खंड ।1। और खंड ।2। द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संसद विधि द्वारा किसी अन्य न्यायालय को उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खंड ।2। के अधीन प्रयोक्तव्य किसी या सभी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त कर सकेगी ।" ।

5.5. यदि एक उच्चतम न्यायालय अपने समग्र ढांचे के साथ अपने व्यक्तित्व को प्रतिपादित करते हुए, समय की चुनौती का सामना करने में असफल रहता है तो आदि निर्माताओं ने उतने ही उच्चतम न्यायालय स्थापित करने की परिकल्पना कर ली थी जितने स्थिति के अनुसार आवश्यक हों । अनुच्छेद 32 के खंड ।3। में यही बात अंतर्निहित है । अनुच्छेद के निर्वचन में बाल की खाल निकालने से कहीं अनुच्छेद के मुख्य आशय की उपेक्षा न हो जाए । यदि किसी विद्यमान न्यायालय को उच्चतम न्यायालय की शक्ति प्रदत्त की जा सकती है तो उसी बात पर संसद एक नए न्यायालय का सृजन करके उसे उच्चतम न्यायालय की शक्ति प्रदान कर सकती है और इस बात का उल्लेख विधि आयोग की पूर्व रिपोर्ट में भी किया गया है[2] जिसमें ऐसे कोई न्यायालय/अधिकरणों को उनके अपने अपने क्षेत्रों में उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता प्रदान किए जाने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है । विधि आयोग को जिस दिशा की ओर बढ़ने के लिए विवश किया गया है वह इसमें उपदर्शित है । आशा की जाती है कि विधि आयोग को उसका आश्रय नहीं लेना पड़ेगा ।

। डी०ए० देसाई ।
अध्यक्ष

।वी०एस० रमादेवी ।
सदस्य-सचिव

नई दिल्ली,
11 मई, 1988

टिप्पण और निर्देश

अध्याय 1

1. प्रथम विधि आयोग के विचारार्थ-विषय, न्यायिक प्रशासन विषय पर 14वीं रिपोर्ट, पृ03.
2. भा0वि0आ0, न्यायिक प्रशासन विषय पर 14वीं रिपोर्ट, पृ0
3. उ0 बख्शी, दी फाउंडेशन ऑफ इंडियन लीगल सिस्टम, पृ05
4. वही, पृ0 59.
5. भा0वि0आ0, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 विषय पर 27वीं रिपोर्ट.
6. भा0वि0आ0, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 विषय पर 37वीं रिपोर्ट (धारा 1 से धारा 176 तक)
7. भा0वि0आ0 दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 विषय पर 41वीं रिपोर्ट।
8. भा0वि0आ0, सिविल विषयों में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता विषय पर 44वीं रिपोर्ट।
9. वही पृ0 7
10. भा0वि0आ0, सिविल विषयों में उच्चतम न्यायालय को सिविल अपील विषय पर 45वीं रिपोर्ट, पृ01
11. भा0वि0आ0, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 विषय पर 54वीं रिपोर्ट
12. भा0वि0आ0, उच्चतर न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता विषय पर 58वीं रिपोर्ट पृ01
13. भा0वि0आ0, उच्च न्यायालयों और अन्य अपीली न्यायालयों में विलंब और बकाया मामले विषय पर 79वीं रिपोर्ट
14. भा0वि0आ0, न्यायाधीशों की नियुक्ति का ढंग विषय पर 80वीं रिपोर्ट
15. भा0वि0आ0, न्यायिक नियुक्तियों के लिए नया मंच विषय पर 121वीं रिपोर्ट

16. भा०वि०आ०, उच्चतम न्यायालय में सांविधानिक प्रश्न-एक प्रस्ताव विषय पर 95वीं रिपोर्ट - पैरा 6.1

17. वही पैरा 6.3

18. बिहार लीगल सपोर्ट सोसाइटी बनाम भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और एक अन्य (1980) 4 एससीसी 767 से 770 तक ।

19. भा०वि०आ०, उच्चतर न्यायालयों में मौखिक और लिखित बहस विषय पर 99वीं रिपोर्ट ।

20. भा०वि०आ०, ग्राम न्यायालय विधेयक पर 114 वीं रिपोर्ट
का न्यायालय विधेयक पर 115वीं रिपोर्ट,
नम न्याय-निर्णयन में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के लिए संघ विधेयक पर 122वीं रिपोर्ट
न्याय प्रशासन का विकेंद्रीकरण : उच्चतर शिक्षा के केन्द्रों से संबंधित विधेयक विवाद विषय पर 123वीं रिपोर्ट

अध्याय 2

1. डा० उपेन्द्र बक्शी, दी ग्राइसिस आफ दी इंडियन लीगल सिस्टम पृ०58

2. न्यायमूर्ति पी०एन० भगवती, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति, 26 नवंबर, 1986 को विधि दिवस पर उनका भाषण ।

3. हेनरी जे, अब्राहम : दी जुडिशियल प्रासेस पृ०187-190

4. एआईआर 1967 एससी 1643

5. एआईआर 1970 एस सी 564

6. ए आई आर 1973 एससी 1461

7. संविधान (तैंतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1977.

8. स्रोत : भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय की वर्ष 1987-88 की वार्षिक रिपोर्ट, पृ031

9. वही

10. स्रोत : विधि और न्याय मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा प्रश्न= अतारांकित प्रश्न सं0 1646, तारीख 10 मार्च, 1988 के उत्तर में दी गई जानकारी ।

11. ए0के0 राय बनाम भारत संघ और एक अन्य, ए आई आर 1982 एस सी 710

12. एस0पी0 गुप्ता और अन्य बनाम भारत का राष्ट्रपति और अन्य, ए आई आर 1982 एस सी 149.

13. बी एन कुमार और एक अन्य बनाम दिल्ली नगर निगम [1987] 4 एस सी सी 609 से 610 तक ।

14. कनुभाई ब्रह्म भट्ट बनाम गुजरात राज्य ए आई आर 1987 एस सी 1159.

15. उपर्युक्त टिप्पण 8

अध्याय 3

1. कोंसिअर्स इण्डि0, तारीख 14 जून, 1952 पृ0129

2. भा0वि0आ0 , 14वीं रिपोर्ट, पृ056

3. वही

4. वही पृ055

5. भा0वि0आ0 न्यायिक नियुक्तियों के लिए नया मंच , विचार पर 121वीं रिपोर्ट, उपाबंध 4.

6. उच्चतम न्यायालय [न्यायाधीश संख्या] संशोधन अधिनियम, 1986

7. भारत के भूतपूर्व न्यायमूर्ति श्री एम0 पी0एन0 भगवती का 26 नवम्बर, 1986 को विधि दिवस पर भाषण ।

8. भा0वि0आ0, 121वीं रिपोर्ट

9. डा0 उपेन्द्र बख्शी, दी क्राइसिस आफ इंडियन लीगल सिस्टम पृ064

10. वही पृ064-68

11. एच एम सीरवाई, कांस्टीट्यूशनल ला आफ इंडिया, तीसरा संस्करण, जिल्द-2, पृ0 2454

12. वही पृ0 2492, पैरा 25, 434.

13. वही पृ0 2477, पैरा 25,411

14. आदेश 7, नियम 1, उच्चतम न्यायालय नियम, 1966.

15. वही, आदेश 7, नियम 1, का परन्तुक.

16. स्रोत : विधि और न्याय मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा तारीख 10 मार्च, 1988 को अतारांकित प्रश्न सं0 1646 का उत्तर ।

17. हिन्दुस्तान टाइम्स में संपादकीय, तारीख 3 मई, 1988

18. नरेश श्रीधर मिरजकर और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य, [1966] 3 एस सी आर 747

19. देखिए उपर्युक्त टिप्पण 12 और 12क

अध्याय 4

1. मा0वि0आ0 14वीं, रिपोर्ट 58वीं और 79वीं रिपोर्टें ।

2. इंडियन एक्सप्रेस, दिल्ली संस्करण 11 मार्च, 1988

3. मा0वि0आ0, 121वीं रिपोर्ट

4. उपर्युक्त टिप्पण 6, अध्याय III

5. मा0वि0आ0 95वीं रिपोर्ट

6. मा0वि0आ0 99वीं रिपोर्ट

7. भारत की पूर्वतर प्रधान मंत्री श्रीमती गांधी की हत्या कांड से संबंधित मामले में हुई अपील ।

8. स्रोत : हेनरी जे अब्राहम, दि ज्युडिशियल प्रासेस 5वां संस्करण पृ0 187 से 190 तक

अध्याय 5

1. [1987] 4 एस सी सी 609 और ए आई आर [1987] एस सी 1159

2. मा0 वि0आ0, 115वीं 122वीं और 123वीं रिपोर्ट ।

उपाबंध-I

सारणी I

वर्ष	वर्ष के आरंभ में लंबित मामले	वर्ष के दौरान संस्थित मामले	वर्ष के दौरान निपटाए गए मामले	वर्ष के अंत में लंबित मामले
1951	771	1602	1787	586
1952	586	1465	1672	379
1953	379	1717	1411	685
1954	685	2131	1930	886
1955	886	2111	1807	1190
1956	1190	2337	1955	1572
1957	1572	2460	1911	2121
1958	2121	2418	2295	2244
1959	2244	2647	2497	2494
1960	2494	3247	3202	2319

स्रोत : राजीव धवन, दि सुप्रीम कोर्ट अंडर स्ट्रेन : दी चैलेंज आफ एरियर्स, पृ0 35.

सारणी II

वर्ष	अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशनों संस्थापन	निपटान	संस्थापन और निपटान के बीच अंतर
1951	686	1000	314
1952	495	521	26
1953	409	381	1288
1954	694	388	306
1955	446	472	26
1956	257	124	133
1957	171	214	43
1958	176	100	76
1959	200	135	66

स्रोत : राजीव धवन, दि सुप्रीम कोर्ट अंडर स्ट्रेन : दि चैलेंज आफ एरियर्स पृ031।

सारणी III

विशेष इजाजत याचिकाएँ सिविल				विशेष इजाजत याचिकाएँ दांडिक			संस्थापन पर निपटारे का या निपटान का कुल आधिक्य
वर्ष	संस्थापन	निपटान	अंतर	संस्थापन	निपटान	अंतर	
1951	200	196	-4	467	364	-103	-107
1952	248	200	-48	402	424	+ 22	- 26
1953	348	232	-116	602	546	- 56	-172
1954	368	417	+ 49	674	698	+ 24	+ 73
1955	451	411	- 40	708	724	+ 16	- 24
1956	725	799	+ 74	725	774	+ 49	+123
1957	645	602	- 43	646	684	+ 38	- 5
1958	781	816	+35	760	756	- 4	+ 31
1959	753	780	+ 27	917	900	- 17	+ 10

\+ संस्थापन पर निपटान का आधिक्य

\- निपटान पर संस्थापन का आधिक्य

स्रोत : राजीव धवन, दि सुप्रीम कोर्ट आर्डर स्ट्रेन : दि चैलेंज आफ एरियर्स पृ० 29 और 123

सारणी - IV

वर्ष	वर्ष के आरंभ में लंबित मामले	वर्ष के दौरान संस्थापन	वर्ष के दौरान निपटान	वर्ष के अंत में लंबित मामले
1961	2319	3216	3558	1977
1962	1977	3559	3883	1703
1963	1703	3757	3290	2170
1964	2179	4064	4068	2166
1965	2166	3930	3814	2282
1966	2282	5507	3806	3983
1967	3983	5202	4146	5039
1968	5039	6576	6228	5397
1969	5387	7524	6641	6270
1970	6270	7106	6272	7104

स्रोत : राजीव धवन, दि सुप्रीम कोर्ट अंडर स्ट्रेन :
दि चैलेंज आफ एरियर्स , पृ०43

परिशिष्ट -I

सारणी -V

वर्ष	विशेष इक्वायन मिटीशर्ज (विचिल) संरथापन	शिवटाले	अंतर	विशेष इक्वायन मिटीशर्ज (पांडिक) संरथापन	शिवटाव	अंतर	संरथापन पर शिवटारे का और इसके विपरीत का कुल आधिक्य
1961	1030	954	-76	970	945	-25	-101
1962	1224	1243	+19	990	1048	+58	+71
1963	1237	1221	-16	952	931	-21	-37
1964	1456	1405	-51	1088	1058	-30	-81
1965	1370	1323	-53	996	1021	+25	+78
1966	1488	1408	-80	885	864	-21	-101
1967	1439	1362	-77	1092	1040	-52	-129
1968	1883	1890	+ 7	1162	1092	-70	-61
1969	2503	2287	-216	1144	1235	+108	-108
1970	2444	2174	-270	1173	1243	+ 70	200

\+ संरथापन पर शिवटाले का आधिक्य
\- शिवटारे पर संरथापन का आधिक्य

स्रोत : रायीव व्यास, दि सुप्रीम कोर्ट अंडर स्ट्रेस : दि चैलेंज आफ एरियर्स, पृ0 41

सारणी - VI

वर्ष	वर्ष के आरंभ में लंबित मामले	वर्ष के दौरान संस्थापन	वर्ष के दौरान निपटान	वर्ष के अंत में लंबित मामले
1971	7104	7979	6491	8592
1972	8592	9096	6822	10846
1973	10846	10174	8175	12845
1974	12845	8203	8261	12787
1975	12787	9528	8727	13588
1976	13588	8254	7734	14109
1977	14109	14501	10395	18215
1978	18215	20840	17095	21960
1979	21960	20754	15833	26887
1980	26887	26365	16953	36293

स्रोत : राजीव धवन, दि सुप्रीम कोर्ट अंडर स्ट्रेन :
दि चैलेंज आफ एरियर्स, पृ० 51

परिशिष्ट - I

सारणी - VII

वर्ष	वर्ष के आरंभ में लंबित मामले	वर्ष के दौरान संस्थापन	वर्ष के दौरान निपटान	वर्ष के अंत में लंबित मामले
1981	36293	31040	18690	48643
1982	48643	43510	29112	63041
1983	63041	55989	45824	73206
1984	73206	49074	35547	86733
1985	86733	51592	51078	87247
1986	87247	12708	19118	80837
1987	80837 152969 *	68911*	46132*	175748 *

* इसमें ग्रहण किए जाने वाले, नियमित और प्रकीर्ण मामले सम्मिलित हैं।

स्रोत : जानकारी 31 अगस्त-सितम्बर, 1985 को दिल्ली में आयोजित उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों / राज्यों के मुख्य मंत्रियों और विधि मंत्रियों के सम्मेलन से और विधि और न्याय मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा 10 मार्च, 1988 को राज्य सभा अतारांकित प्रश्न 1646 के उत्तर से प्राप्त की।

सारणी - VIII

वर्ष 1981 से 1986 तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों (भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर) की संख्या दर्शित करने वाला विवरण

सं0 वर्ष	न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या	न्यायपीठ में वास्तव में प्रतिष्ठापित न्यायाधीशों की संख्या	अवधि से	अवधि तक	खाली पड़ी रह गई रिक्तियां	वह अवधि जिसके दौरान रिक्तियां खाली पड़ी रह गईं: वर्ष	माह	दिन
1 2	3	4	5		6	7		
1. 1981	17	13	1.1.81	14.1.81	4	0	0	14
	17	12	15.1.81	27.1.81	5	0	0	13
	17	13	28.1.81	29.1.81	4	0	0	2
	17	15	30.1.81	31.12.81	2	0	11	2
2. 1982	17	14	1.1.82	6.3.82	3	0	2	6
	17	13	7.3.82	31.12.82	4	0	9	28
3. 1983	17	13	1.1.83	1.1.83	4	0	0	12
	17	12	13.1.83	14.3.83	5	0	2	2
	17	16	1.1.83	31.12.83	1	0	9	17
4. 1984	17	16	1.1.84	24.6.84	1	0	5	24
	17	17	25.6.84	31.12.84	कोई नहीं	0	6	7

1	2	3	4	5		6	7		
5.	1985	17	17	1.1.85	8.5.85	कोई नहीं	0	4	8
		17	16	9.5.85	11.7.85	1	0	2	3
		17	15	12.7.85	16.6.85	2	0	1	5
		17	14	17.6.85	20.6.85	3	0	0	4
		17	13	21.6.85	30.9.85	4	0	1	10
		17	12	1.10.85	28.10.88	5	0	0	2
		17	14	29.10.85	31.12.85	3	0	2	3
6.	1986	17	14	1.1.86	8.3.86	3	0	2	8
		17	13	9.3.86	9.3.86	4	0	0	1
		17	16	10.3.86	6.4.86	1	0	0	2
		17	15	7.4.86	14.6.86	2	0	2	3
		17	14	15.6.86	1.10.86	3	0	3	7

स्रोत : सामग्री अवर रजिस्ट्रार, भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रदाय की गई ।

उच्चतम न्यायालय में
बकाया मामले (1950-60)
(पैरा 2-7)

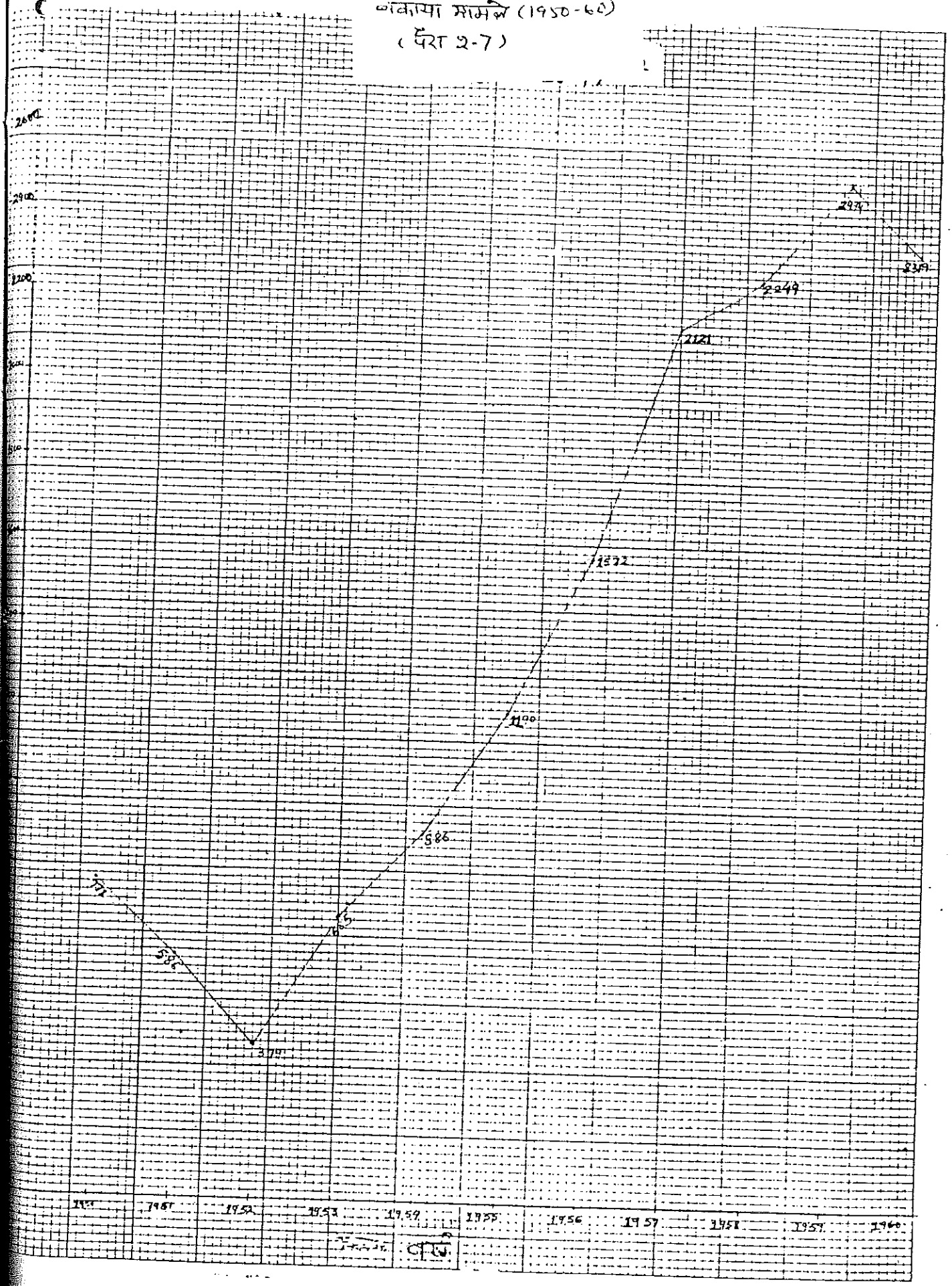

परिशिष्ट II

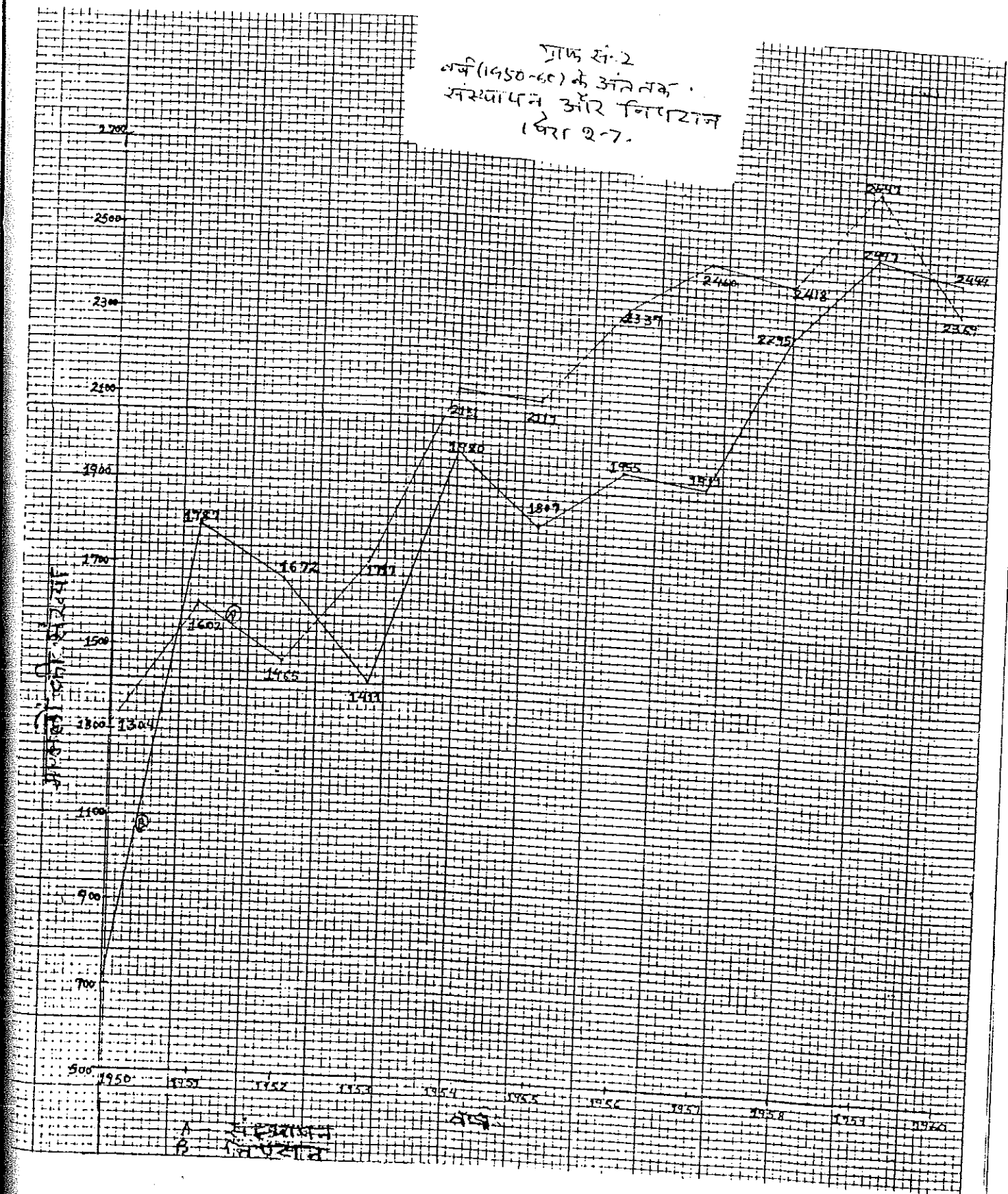

ग्राफ सं. 2
वर्ष (1950-60) के अंत तक
संस्थापन और निपटान
(पैरा 2-7.
2700
2500
2300
2100
1900
1700
1500
1300
1100
900
700
500
1950
1951
1952
1953
1954
1955
1956
1957
1958
1959
1960
वर्ष
1304
1787
1602
1672
1465
1980
1807
1955
2337
2460
2418
2295
2444
A संस्थापन
B निपटान

परिशिष्ट II

ग्राफ III
अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशनों का संस्थापन और निपटान (1951-59)
(पैरा 2.7)

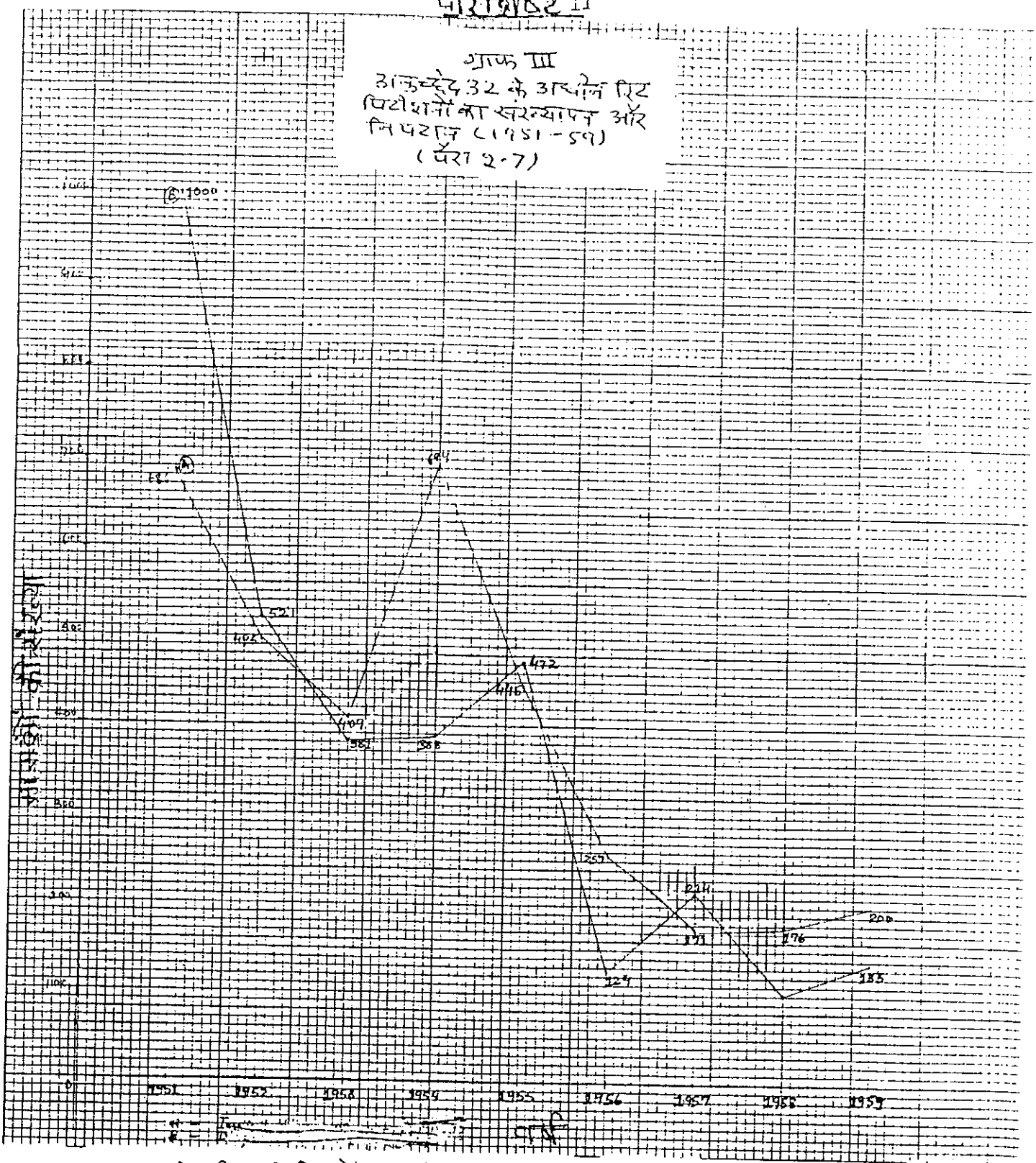

A- रिट पिटीशनों का संस्थापन
B- रिट पिटीशनों का निपटान

परिशिष्ट-II

ग्राफ सं. IV

विशेष इजाजत पिटीशनों- सिविल और दांडिक - का संस्थापन और निपटान (1951-60) (पैरा 2.8)

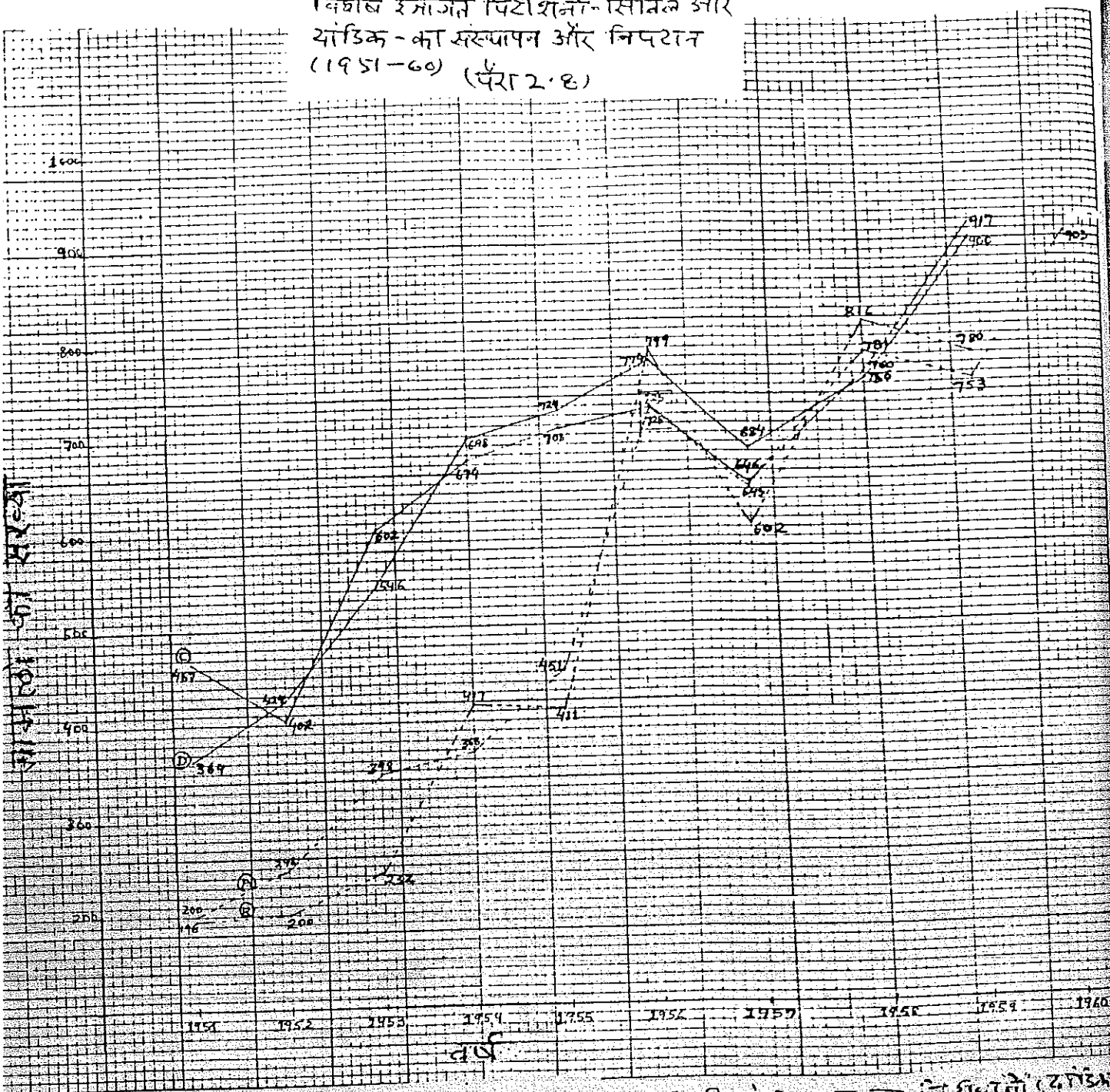

A- विशेष इजाजत पिटीशनों (सिविल) का संस्थापन

B- विशेष इजाजत पिटीशनों (सिविल) का निपटान

C- विशेष इजाजत पिटीशनों (दांडिक) का संस्थापन

D- विशेष इजाजत पिटीशनों (दांडिक) का निपटान

परिशिष्ट II

ग्राफ III

अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशनों का संस्थापन और निपटान (1951-59)
(पैरा 2-7)

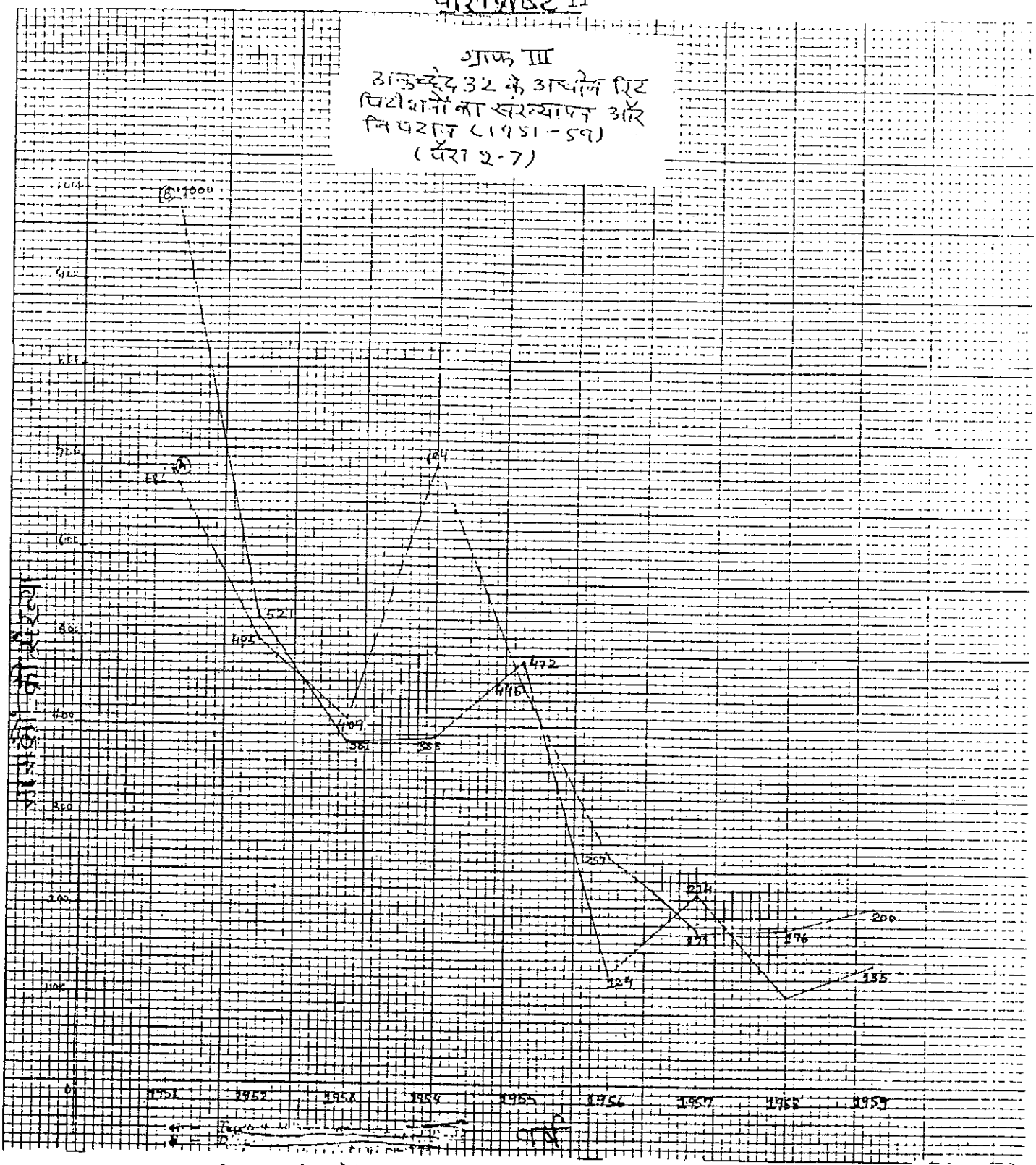

A- रिट पिटीशनों का संस्थापन
B रिट पिटीशनों का निपटान

परिशिष्ट - II

ग्राफ सं· IV

विशेष इजाजत पिटीशनों - सिविल और यांत्रिक - का संस्थापन और निपटान (1951-60) (पैरा 2·8)

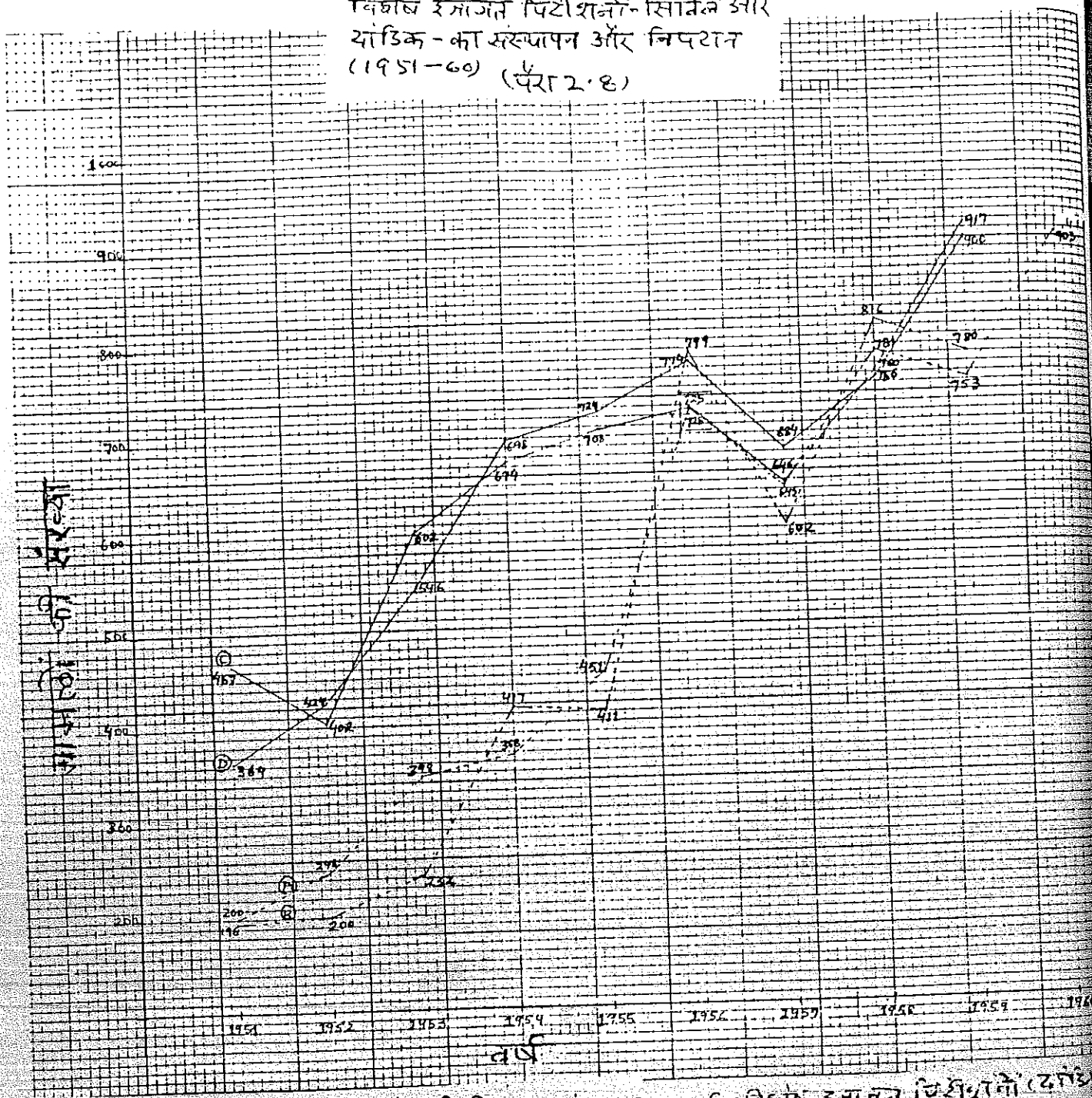

A - विशेष इजाजत पिटीशनों (सिविल) का संस्थापन
B - विशेष इजाजत पिटीशनों (सिविल) का निपटान
C - विशेष इजाजत पिटीशनों (यांत्रिक) संस्थापन
D - विशेष इजाजत पिटीशनों (यांत्रिक) निपटान

परिशिष्ट II

ग्राफ सं. V

उच्चतम न्यायालय में लंबित मामले

(1961-70)

(पैरा 2.10)

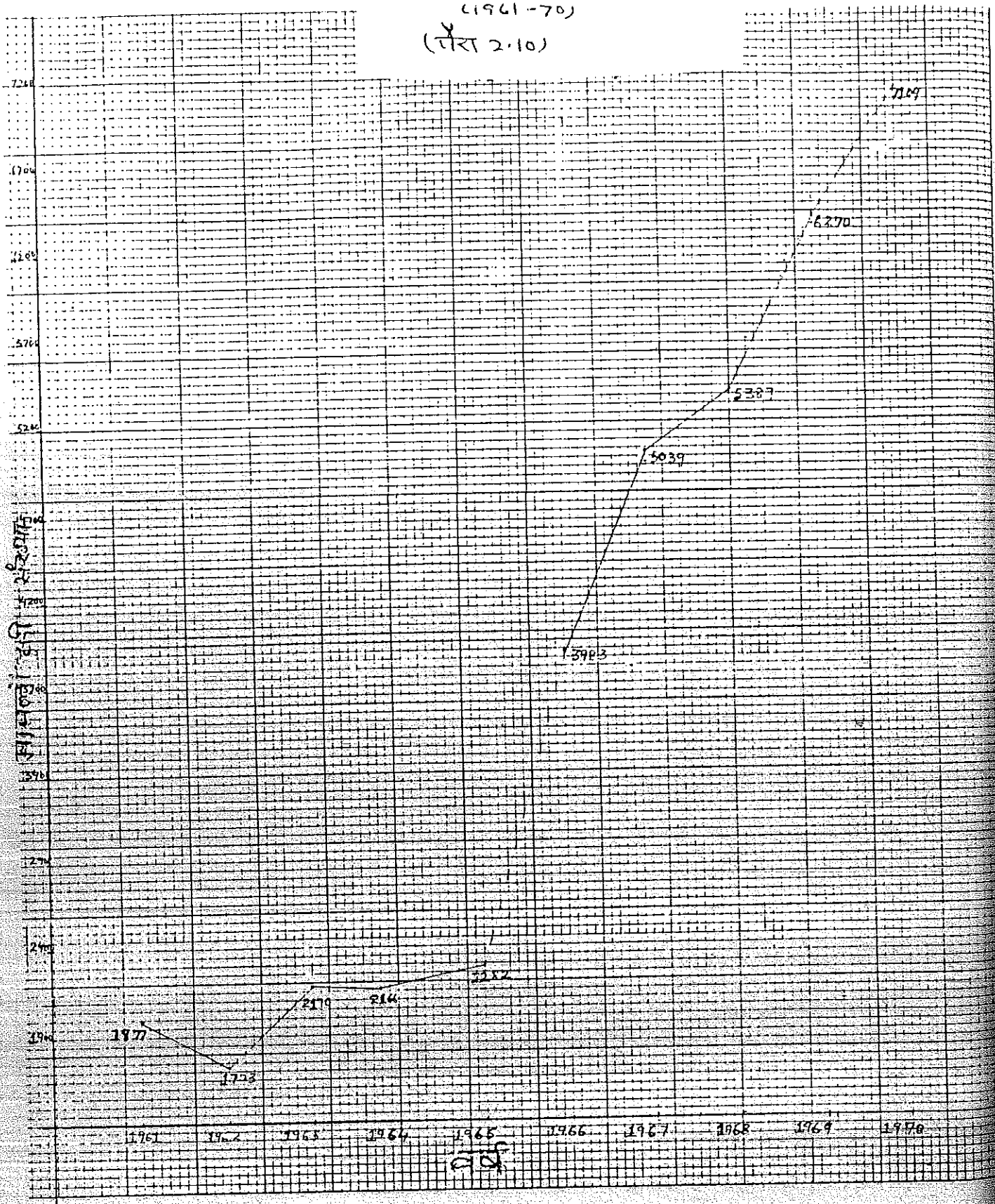

परिशिष्ट II

पैरा VI

मामलों का संस्थापन और निपटान (1961-70)

(पैरा 2.10)

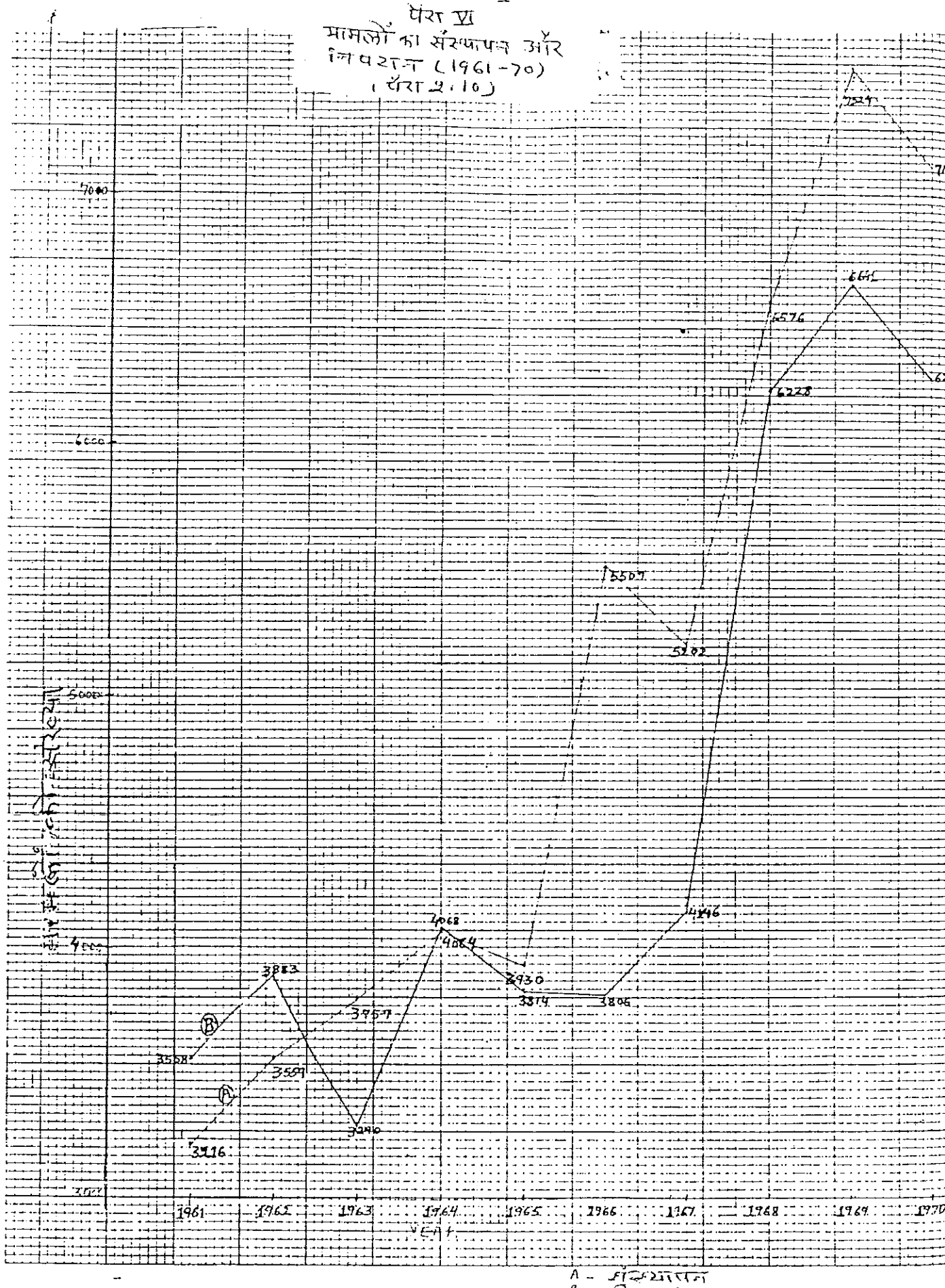

परिशिष्ट II

A --- वि. इ. पि. (सिविल) का संस्थापन
B --- वि. इ. पि. (सिविल) का निपटान
C — वि. इ. पि. (दाँडिक) का संस्थापन
D — वि. इ. पि. (दाँडिक) का निपटान

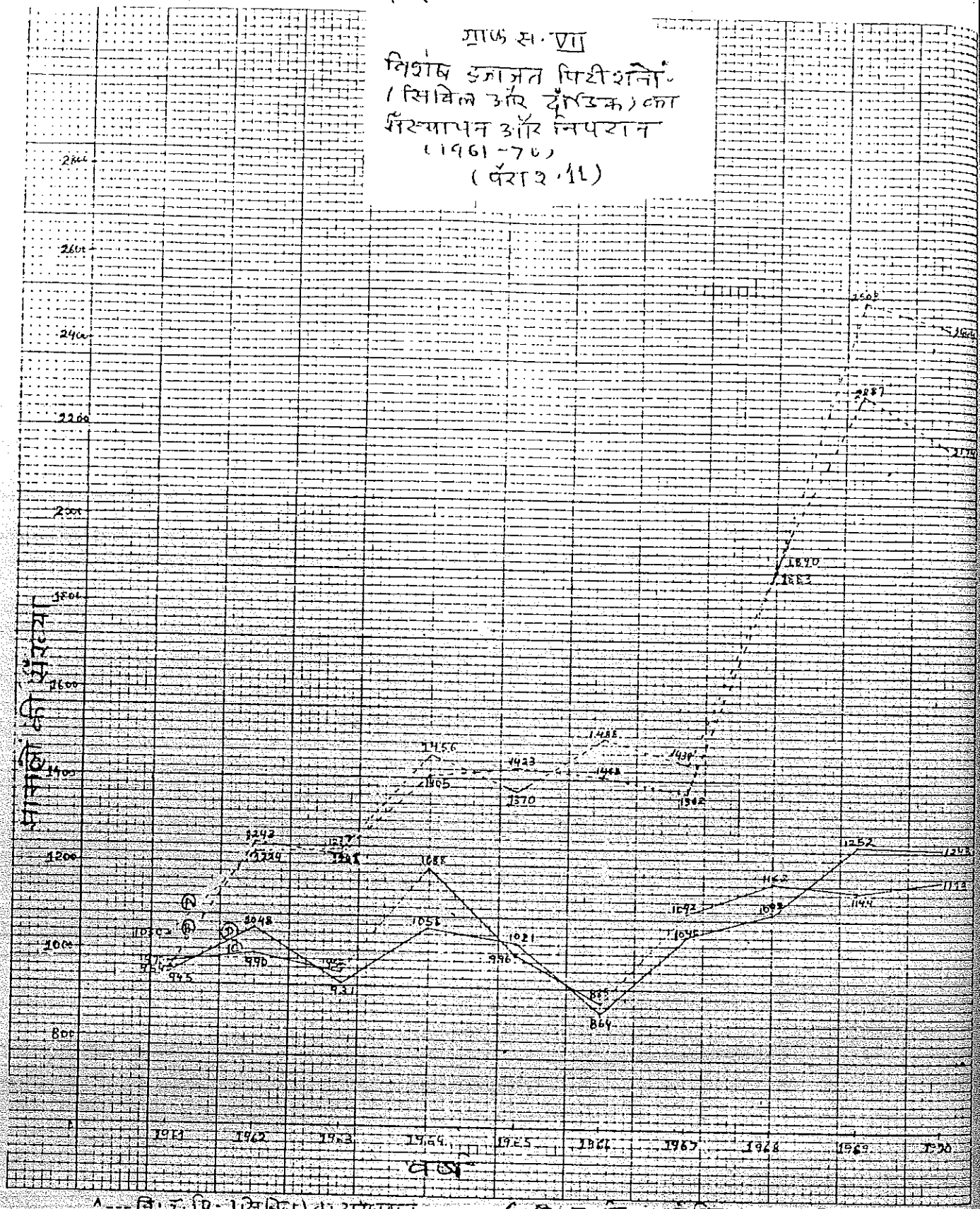

परिशिष्ट II
ग्राफ सं VIII
उच्चतम न्यायालय में बकाया
मामले (1971-80)
(पैरा 2.13)

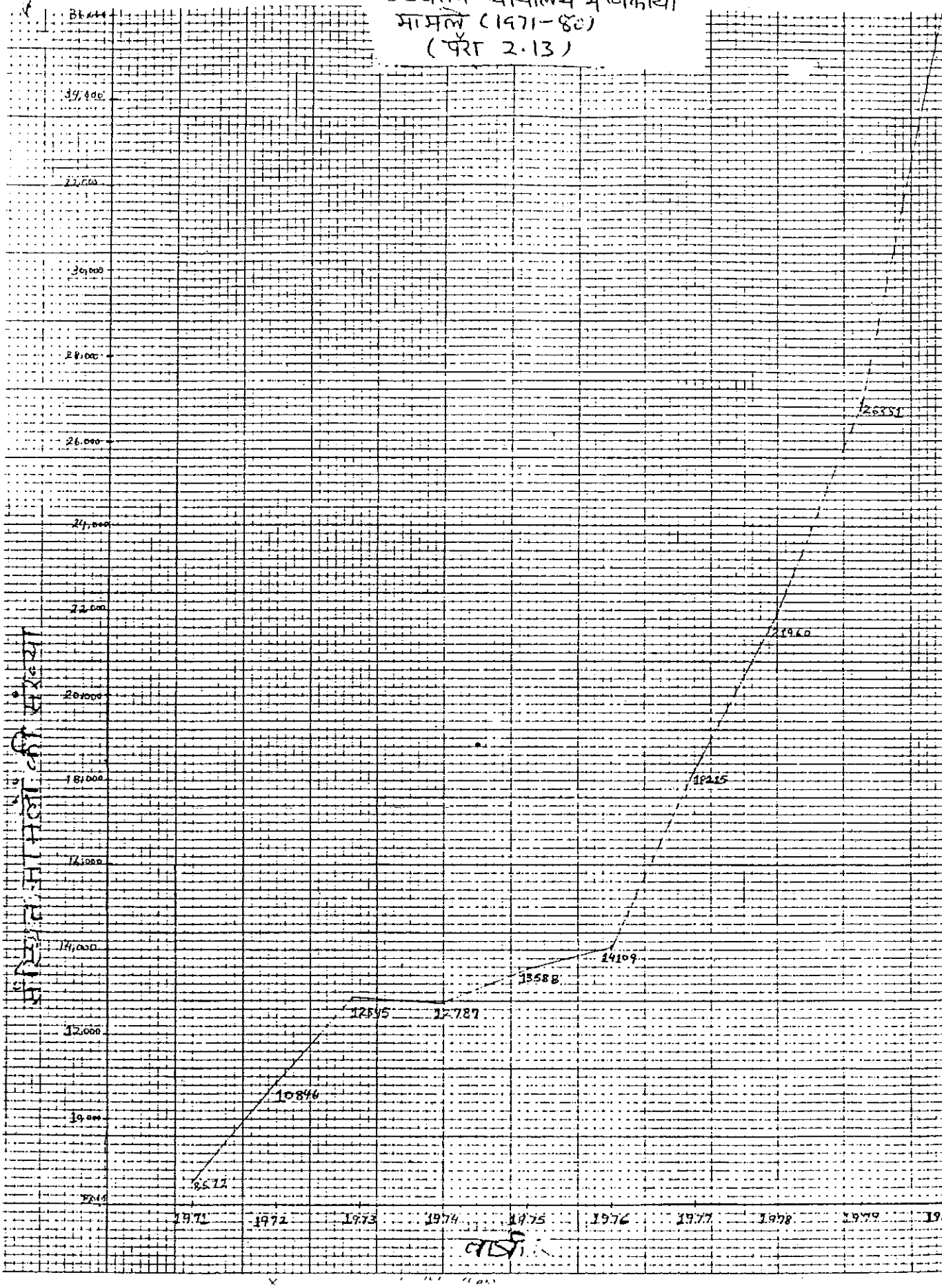

परिशिष्ट II
ग्राफ सं. IX
मामलों का संस्थापन और निपटान
(1971 - 80)
(पैरा 2.13)

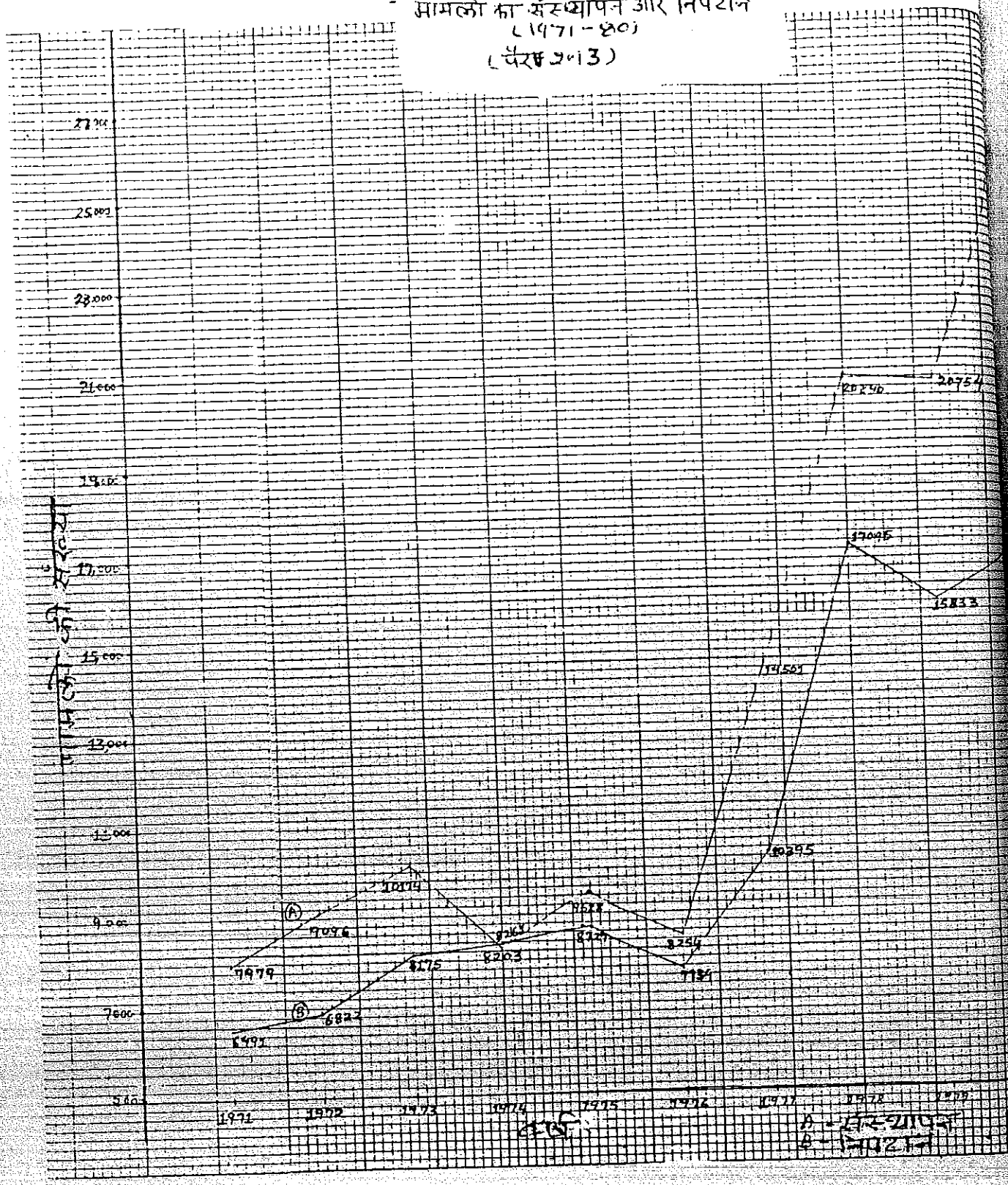

परिशिष्ट II
ग्राफ सं. X
उच्चतम न्यायालय में
बकाया मामले (1981-87)
(पैरा 2.16)

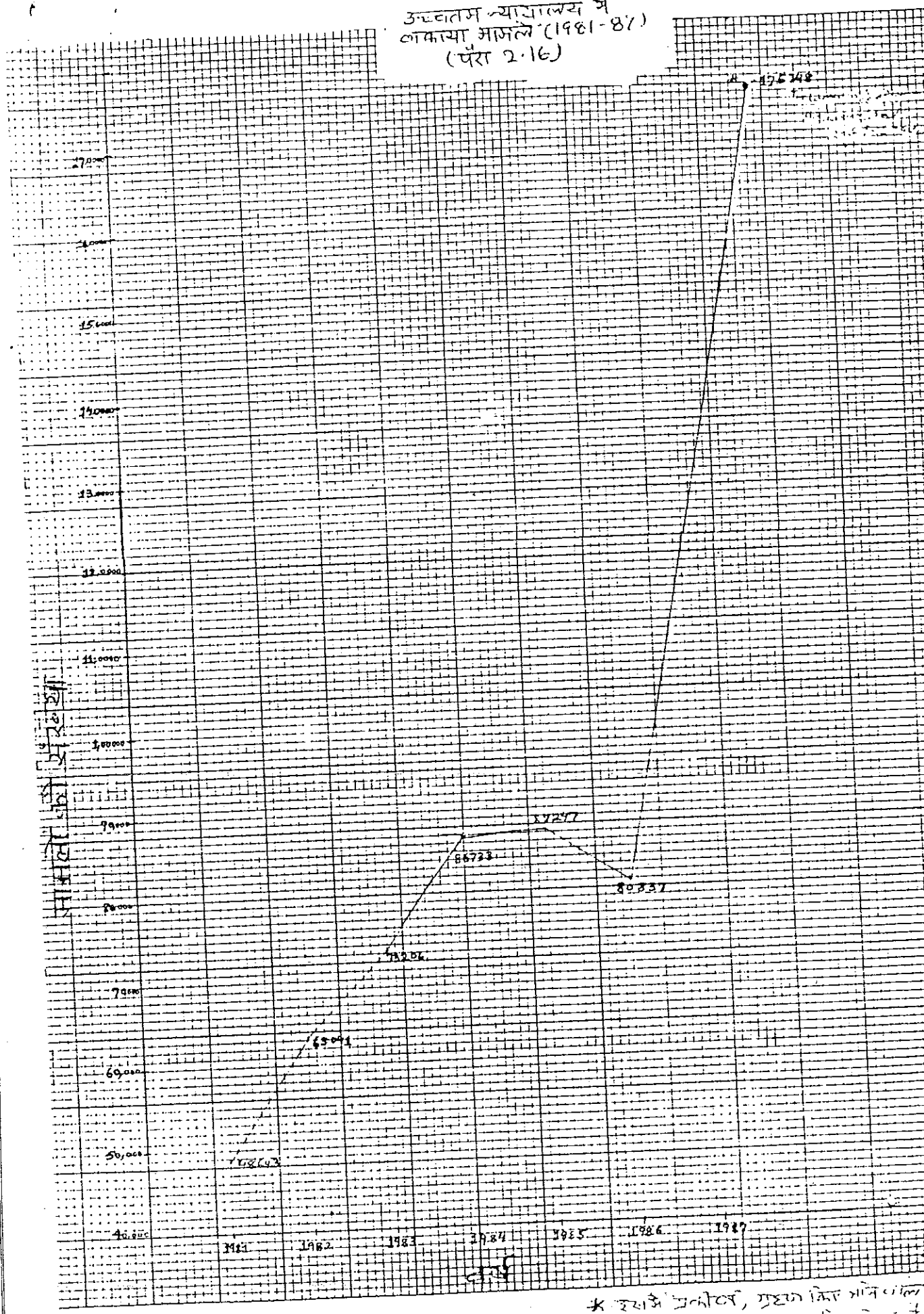

* इसमें अन्तर्गत, ग्रहण किए जाने वाले
नियमित मामले सम्मिलित हैं

परिशिष्ट II
ग्राफ सं. 3
मामलों का संस्थापन और
निपटान (1981-85)
(पैरा 2.16)

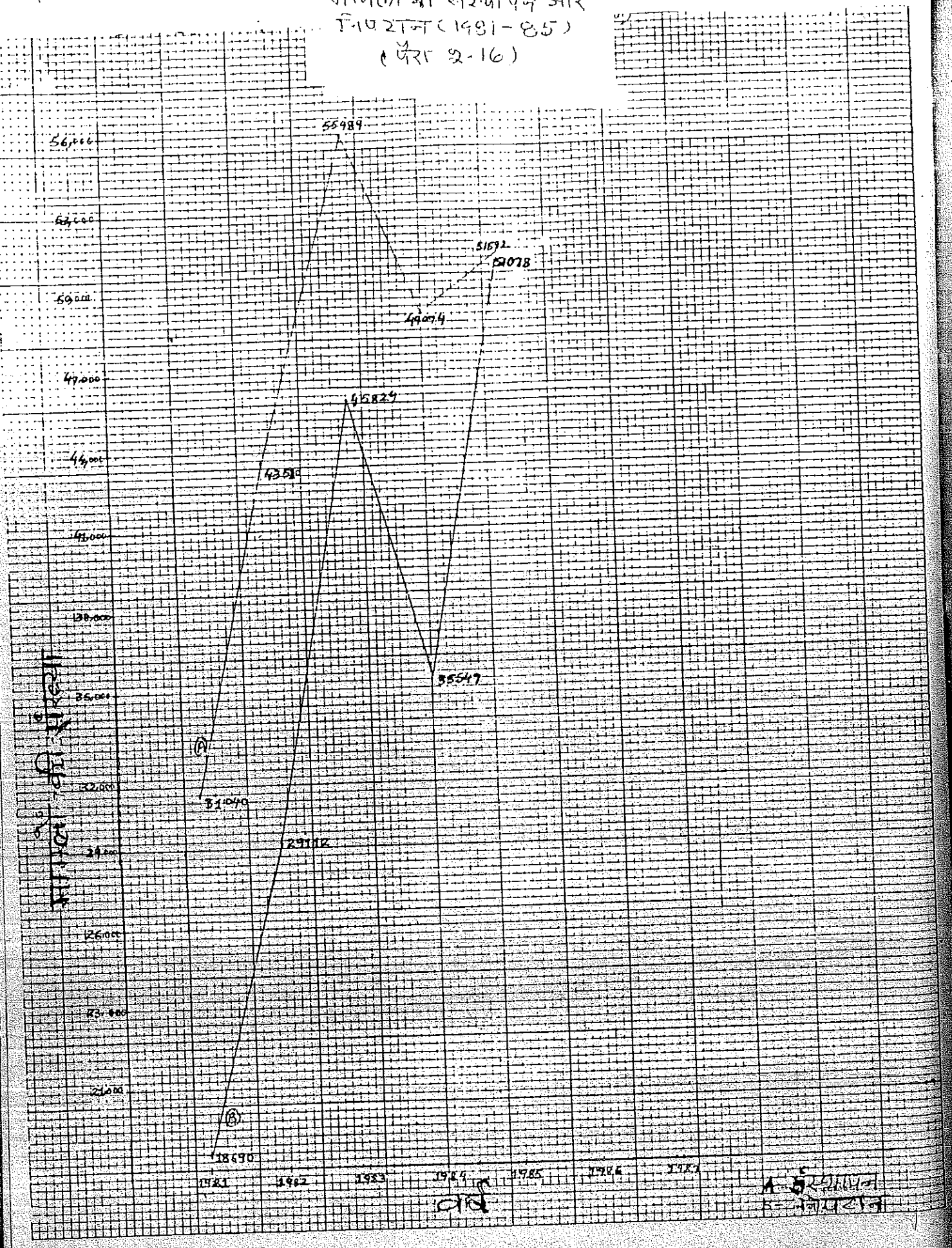

अ०स०सं०3/ /88/वि०आ०

परिशिष्ट-III
(पैरा 4.1)
विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली

डी०ए० देसाई,
अध्यक्ष

19 जनवरी, 1988

प्रिय न्यायमूर्ति श्री पाठक,

भारत सरकार ने वर्तमान न्याय पद्धति और उसकी कमियों और कमजोरियों का गहन अध्ययन करने और पद्धति को समाज की सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रभावी तथा लचीला बनाने के लिए उसमें आमूल सुधारों की सिफारिश करने के लिए न्यायिक सुधार आयोग नामक एक आयोग की स्थापना करने का संकल्प किया था । उसने उसके लिए विचारार्थ विषय तैयार किए थे । फरवरी, 1986 में अध्ययन करने और न्यायिक सुधारों की सिफारिश करने का महत् कार्य वर्तमान विधि आयोग को समनुदेशित किया गया था । भारत सरकार द्वारा तैयार किए गए विचारार्थ विषयों को ध्यान में रखते हुए, उसकी एक प्रति, निर्देश की सुविधा के लिए इस पत्र के साथ संलग्न है । विधि आयोग से अनुरोध किया गया था कि वह इस नए कार्य को उच्च प्राथमिकता प्रदान करे । तदनुसार, विधि आयोग ने इस कार्य पर अपना ध्यान केंद्रित किया है ।

निर्देश प्राप्त होने के पश्चात् से विधि आयोग ने दस रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं जिनकी सूची तुरन्त निर्देश के लिए, इस पत्र के साथ संलग्न है ।

विधि आयोग अपनी कार्य योजना में उस क्रम पर पहुंच गया है जहां वह विचारार्थ विषय की पद सं० 1(i)(i) और 2 के विशेष संदर्भ में उच्च न्यायालयों और भारत के उच्चतम न्यायालय में बकाया मामलों की समस्या की गहन समीक्षा का कार्य आरंभ करेगा ।

विगत में, विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट 58वीं और 79वीं रिपोर्टों में उच्च न्यायालय की संरचना और अधिकारिता की समीक्षा की है । न्याय प्रशासन संबंधी 14वीं रिपोर्ट में एक अध्याय भारत के उच्चतम न्यायालय के संबंध में है । 59वीं रिपोर्ट में उच्चतम न्यायालय में ही एक सांविधानिक न्यायपीठ की स्थापना का आमूल सुझाव था । मैं यह औचित्यपूर्ण उपधारणा कर सकता हूं कि आप इन रिपोर्टों में की गई सिफारिशों से अवगत होंगे । फिर भी मैं यह कहना चाहूंगा कि 95वीं रिपोर्ट बिल्कुल ही कार्यान्वित नहीं की गई है और वह आज तक मुद्रित भी नहीं की गई है ।

विधि आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन मंत्रणा से होता है । वास्तव में, अक्सर सिफारिशों की उपेक्षा की जाती है । जैसा भी हो, भारत सरकार ने इस देश की न्याय व्यवस्था में आमूल सुधार लाने की तीव्र इच्छा ~~प्रदर्शित करते~~ हुए विचारार्थ विषय तैयार किया है ।

मैं आपको यह सूचित करना चाहूंगा कि विधि आयोग ने विचारार्थ विषयों से संबंधित दस रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं, उनमें से तीन रिपोर्टें अर्थात् 115वीं, 122वीं और 123वीं रिपोर्टें प्रत्यक्षतः न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के संबंध में है । उनमें केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना और कर मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त करने की सिफारिश की गई है । इसी प्रकार की कार्य पद्धति की जानकारी विधि आयोग को है जिसमें राज्यों और केन्द्रीय स्तर पर औद्योगिक विवाद आयोग और इसी स्तर पर विशेष विषयों पर कार्यवाही करने के लिए केन्द्रीय सेवाधिकरण की स्था की सिफारिश की गई और उसके साथ ही इन विषयों में उच्च न्याया की अधिकारिता समाप्त करने की सिफारिश की है ।

बकाया मामलों की समस्या उच्च न्यायालयों और भारत के उच्चतम न्यायालय में रिक्तियों के भरे जाने के मोर्चे पर अत्यंत चिंतनता से प्रत्यक्षतः परस्पर जुड़ी हुई है । मुझे नहीं मालूम कि त्रुटि कहां हुई है तथा यही है कि रिक्तियों को भरने में असामान्य विलंब हुआ है । इस संबंध में आपको यह सूचित करते हुए मुझे प्रसन्नता हुई है कि विधि आयोग ने एक व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की स्थापना की सिफारिश की गई है ।

विधि आयोग अपनी योजनाबद्ध और परियोजित कार्य सूची में बकाया मामलों की समस्या की समीक्षा करेगा जो उच्चतम न्यायालय में रिक्तियों को भरने में असफलता से परस्पर जुड़ी हुई है ।

विधि आयोग के सुझाव के रूप में अपनी विचार धारा के बारे में आपको सूचित करते हुए मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है । आशा है आपसे इस बारे में समालोचनात्मक प्रत्युत्तर प्राप्त होगा ।

राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग संबंधी रिपोर्ट में, विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में शीघ्रता से रिक्तियों को भरने की समस्या से निबटने के लिए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना करने का प्रस्ताव किया है । यदि इसे कार्यान्वित किया जाता है तो विधि आयोग की राय है कि यह बहुत हद तक स्थिति को अपनी पूर्व स्थिति में ला देगा । किन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती । अतः मेरा आपसे विनम्र निवेदन है कि इस बाबत एक और सुझाव पर विचार करें ।

मुझे बताया गया है कि लगभग तीस वर्ष पूर्व एक परिपाटी बनी थी कि सभी रिक्तियां भरे जाने तक, मुख्य न्यायमूर्ति संविधान के अनुच्छेद 128 का आश्रय नहीं ले सकता । यह परिपाटी इस तथ्य के आधार पर स्थापित की गई थी कि रिक्तियां अत्यंत शीघ्रता से भरी

आज स्थिति निराशाजनक रूप में भिन्न है । यदि बदली हुई परिस्थितियों में परिपाटी का सम्मान रखा जाता है तो यह अनुच्छेद 128 को नकारात्मक बना देगा जिसके बारे में संविधान निर्माताओं ने कभी प्रत्याशा नहीं की होगी । अतः समस्या पर दो स्वतंत्र दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है ।

रिक्त पदासीन न्यायाधीश के सेवानिवृत्त होने या उसकी मृत्यु हो जाने पर होती है । मृत्यु ऐसी अनिश्चित घटना है कि उसके बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता और उससे विवेकपूर्ण ढंग से निपटा जा सकता है किन्तु सेवानिवृत्ति के बारे में तो पहले से पता होता है । अतः यदि होने वाली रिक्तियों को भरने के लिए बहुत पहले से कार्रवाई की जाए तो यदि रिक्ति भरी भी नहीं गई है तो भी निवृत्तमान न्यायाधीश तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक कि किसी पदधारी की नियुक्ति नहीं कर ली जाती । इस सुझाव के विरुद्ध एक आलोचना जो उभर कर सामने आई है वह यह है कि यदि मुख्य न्यायमूर्ति की किसी न्यायाधीश के संबंध में अच्छी राय है तो वह उसके उत्तरवर्ती के लिए सिफारिश नहीं करेगा किन्तु यदि किसी न्यायाधीश के संबंध में उतनी अच्छी राय नहीं है तो यथा संभवशीघ्र उसके उत्तरवर्ती को लाकर उसे निकाला जा सकता है । यह आशंका इस तथ्य के कारण पूर्णतः निर्मूल है कि रिक्तियां कालानुक्रम में जैसी वह होती हैं, भरी जाती हैं । एक या दो मास का अंतर पड़ सकता है । किन्तु इस प्रणाली को अपनाए जाने से न्यायालय सदैव की स्वीकृत संख्या सदैव बनी रहेगी ।

दूसरा अंतिम सुझाव यह है कि राजधानी दिल्ली में उच्चतम न्यायालय के कुछ न्यायाधीश, सेवानिवृत्ति के पश्चात् बस गए हैं । उन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया है और परिवहन संबंधी व्यवस्था भी कर ली है । अनुच्छेद 128 में यह उपबंध है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, किसी भी समय, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, किसी व्यक्ति से जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है या जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है और उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए सम्यक् रूप से अर्हित है, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधी के रूप में उपस्थित होने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा । न्यायाधीशों की जो राजधानी में बस चुके हैं, सेवाएं ली जा सकती न्यायालय समय के समायोजन का ही प्रश्न है । सेवानिवृत्त न्याया से प्रातः 8.30 बजे आने और दोपहर 12 बजे तक कार्य करने के लि अनुरोध किया जा सकता है । तीन तीन न्यायाधीशों की चार बि न्यायपीठें स्थापित करके जिनमें से दो न्यायपीठें पुरानी सिविल अ और दो न्यायपीठें पुरानी दांडिक अपीलें, उदाहरण के लिए 1980 पूर्व संस्थित अपीलें निपटाएंगी, वे यथाशक्य अधिक मामले निपटा सकते हैं और इससे उच्चतम न्यायालय की संस्थापित सामर्थ्य का जिसका कम उपयोग किया जाता है, अच्छा उपयोग होगा । उन्हें पेंशन काटे बिना पूरा वेतन और उपदान के बराबर पेंशन देकर उनकी प्रतिपूर्ति की जानी होगी । इसमें बहुत कम खर्च होगा और पुराने मामलों के जिनसे पद्धति बदनाम हो गई है, निपटारे का बड़ा कार्य पूरा होगा । इसके साथ ही उन प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों के जो उस समाज को सहयोग देने के लिए शारीरिक रूप से स्वस्थ हों जिसने उन्हें वह प्रास्थिति प्रदान की है, अनुभव को भी उपयोग में लिया जाएगा । इसमें ऊपर निर्दिष्ट परिपाटी को सम्मान पूर्वक दफना दिया जाना चाहिए क्योंकि अब उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है ।

1 उपलब्ध की दृष्टि से कि जिसमें कोई [illegible]
[illegible]